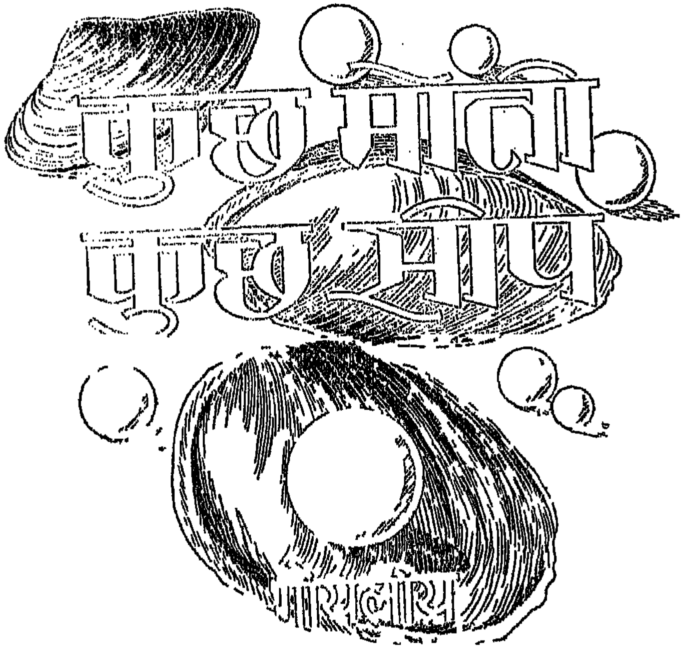

Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891.3
Book No.
Receipt No. 3397


कुछ मोती
कुछ सीप

'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रन्थाङ्क ५४

# कुछ मोती कुछ सीप

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-हिन्दी-ग्रन्थ-माला-सम्पादक और नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य ढाई रुपये

मुद्रक
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

ममता बेटीको

आठवीं वर्षगाँठपर

२९ दिसम्बर १९५६ ई०

# विषय-क्रम

## कृति

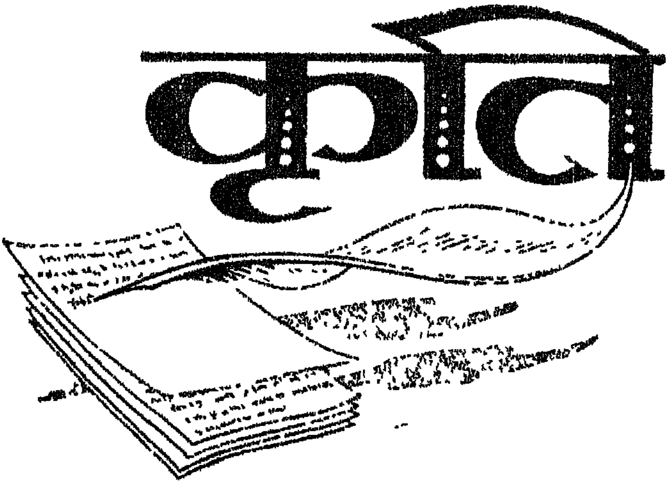
## स्मृति



## श्रुति



## धृति


कृति

# इन्सान नहीं

भारतकी अहिंसा एवं शान्तिकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिसे प्रभावित होकर चीनसे एक सांस्कृतिक शिष्ट-मण्डल भारत-भ्रमणके लिए आया तो वह बम्बई उन दिनों पहुँचा, जबकि राज्य-पुनर्गठन-आयोग-रिपोर्टके विरुद्ध वहाँ उपद्रव हो रहे थे। गली-कूचोंमें आग लग रही थी। निर्वस्त्र महिलाओंके शव यत्र-तत्र पड़े हुए थे। बच्चोंकी चीत्कारों और वृद्धाओंकी कराहटोंसे सहमकर भेड़िये और लकड़बग्घेतक बिलोंमें छिप गये थे। लोग हाथोंमें मशाल और झण्डे लिये हुए, जिन्दाबाद-मुर्दाबादके नारे लगाते हुए पिशाच बने हुए निर्द्वन्द्व विचरण कर रहे थे। चौपाटीपर खड़े हुए लोकमान्य तिलकके बुतके नीचे बैठी हुई मानवता सर पीट रही थी।

यह घिनावना दृश्य आगन्तुक शिष्ट सदस्योंसे न देखा गया तो वे अपने होटलके कमरोंकी खिड़कियाँ बन्द करके बैठ रहे, किन्तु साथमें आये हुए एक किशोरसे कौतूहल सँवरण न हो सका। एकान्त पाकर उसने अपनी माँसे फुस-फुसाते हुए पूछा—"यह मनुष्य क्या कर रहे हैं माँ?"

माँने मुँहपर उंगली रखके चुप रहनेका संकेत करते हुए कहा—"ये मनुष्य नहीं हैं बेटे?"

किशोर आश्चर्यचकित स्वरमें बोला—"यह मनुष्य नहीं हैं, यह आप क्या फ़रमा रही हैं माँ?"

"हाँ बेटे, ये मनुष्य नहीं हैं।"

"तो कौन हैं, ये लोग माँ?"

"ये मराठी हैं, गुजराती हैं, दक्षिणी हैं, कच्छी हैं, और न जाने क्या-क्या हैं; परन्तु मनुष्य हरगिज नहीं हैं।"

"मनुष्य हरगिज नहीं हैं, यह कैसे? इनकी शक्लो-सूरत तो मनुष्यों-



जैसी ही है माँ ?"

"हुआ करे ! शक्लो-मूरत यकसाँ होनेमें क्या होता है ? यदि व्याघ्र गौ-चर्म लपेट ले तो वह क्या गौ हो सकेगा ?"

"गोकी उपयोगिता न रखने पर भी गौ-मुखी व्याघ्र धोखा तो दे ही सकता है माँ ?"

"हाँ, बेटे उसी तरह मानव-वेशमें यह प्रान्तीय भेड़िये और सम्प्रदायी लकड़बग्घे मानवताको छल रहे हैं।"

"मानवताको छल रहे हैं यह लोग ?"

"हाँ बेटे ! छल तो कभीके चुके, अब तो उसे निर्वस्त्र करके दुर्योधनको मुँह चिढ़ा रहे हैं।"

"दुर्योधनको मुँह क्यों चिढ़ा रहे हैं ? यह दुर्योधन कौन था माँ ?"

"पाँच हज़ार वर्ष पूर्व इसी भारतमें इनके पूर्वजोंमें एक दुर्योधन हुआ था। उसने तत्कालीन एक असहाय द्रौपदी अबलाको भरे दरबारमें निर्वस्त्र करना चाहा था, किन्तु कर न सका था। आज उसीके वंशज द्रौपदीकी अनेक पुत्रियोंको निर्वस्त्र करनेमें सफलता पा रहे हैं। उसी विजयोल्लासमें असफल दुर्योधनको मुँह चिढ़ा रहे हैं, और मानवता मुँह ढाँपे बिलख-बिलखकर रो रही है बेटे !"

"मानवता इतनी अशक्त और असहाय क्यों है माँ ! कि वह इन अत्याचारियोंको कुछ भी नहीं समझा पा रही है, और क्षत-विक्षत होती जा रही है।"

"इतने दरिन्दोंके समक्ष वह करे भी क्या ? भेड़ियोंके झुण्डमें अकेली अजा कितनी विवश होती है, बेटे ?"

"ये लोग मनुष्य क्यों नहीं हैं माँ ?"

"मिठाईमें जैसे मिष्टता लाज़िमी है, वैसे ही मनुष्यमें मनुष्यता ज़रूरी

है। नमक-मिर्च, खटाईसे जैसे मिष्टता दूर रहती है, वैसे ही स्वार्थियों, हिंसकों, वंचकोंसे मनुष्यता विलग रहती है।"

"इन्हें आप स्वार्थी, हिंसक, वंचक क्यों कह रही हैं? इनके महत्त्वपूर्ण नारे तो देश-देशान्तरोंमें गूँज रहे हैं मां?"

"हाँ बेटे, शृगाल जब नीलके हौजमें गिरकर रंगीन हो गया था, तब वह मायावी, वनचरोंको मुद्दतों भुलावेमें रखता रहा था; किन्तु अन्तमें उसका वास्तविक रूप प्रकट हुआ कि नहीं?"

"हाँ माँ!"

"ये लोग भी अपनी अतृप्त आकांक्षाओंको तृप्त करनेके लिए अपना मायावी रूप बनाये हुए हैं। जैसे कभी नख-दन्त-गलित निःशक्त सिंहने सोनेका कुण्डल हाथमें लेकर मनुष्योंको, और बूढ़ी बिलाईने माला पहनकर कमण्डलु हाथमें लेकर चूहोंको ठगा था।"

"तब हम लोग यहाँ क्यों आये माँ? वापिस चलो न माँ?"

"तू बहुत बातूनी होता जा रहा है। रात बहुत काफ़ी जा चुकी है, अब चुप-चाप सो जा। इसी भारतमें ऐसी भी विभूतियाँ हैं बेटे, जिनपर विश्वकी शान्ति निर्भर है। इसी भारतमें ऐसे भी मानव हुए हैं कि उनके स्मरणसे जन्म-जन्मान्तरोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। उनकी चरण-रज आँजने-से आँखोंको दिव्य ज्योति प्राप्त होती है।"

"तब उस रजको यह लोग क्यों नहीं लगा लेते माँ?"

"तू अब सोयेगा कि नहीं? उलूक सूर्य-प्रकाशसे लाभ नहीं उठा पाता तो उसके दुर्भाग्यपर तरस खानेके सिवा और उपाय ही क्या है?"

माँ अपने बच्चेके प्रश्नोंसे उकताकर उसे थपक-थपककर सुलानेका प्रयत्न करने लगी।

**१० फ़रवरी १९५६ ई०**

# पशु-पक्षी-सम्मेलन

मनुष्योंकी नित नई करतूतोंसे तंग आकर पशु-पक्षियोंके प्रतिनिधि नेपालके एक बीहड़ वनमें इकट्ठे हुए। कोयलके मधुर गीतके बाद कागराजने चाहा कि सम्मेलनके अध्यक्षपदको सिंहराज सुशोभित करें कि सिंह गरजकर बोला—"कागराज! तुम मानव-संसारमें रहते-रहते मनुष्य बनते जा रहे हो। वरना इस तरहकी बात न कहते। ध्यान रहे यह पशु-सम्मेलन है। अपने समाजमें कौन छोटा कौन बड़ा? यहाँ सब एक समान हैं।"

सिंहकी बात सभीको पसन्द आई। पशु-पक्षी गरदन हिला-हिलाकर सिंहराजके इस विचारकी सराहना करने लगे। कागने क्षमा माँगते हुए कहा—"संस्कारवश मुझसे सचमुच भूल हुई। मुझे इसका खेद है। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं मनुष्य हरगिज-हरगिज नहीं हूँ और न कभी होनेकी कोशिश करूँगा।"

कागराजके इस नम्र व्यवहारसे पशु-पक्षी बहुत प्रसन्न हुए। कोलाहल और कलरव शान्त होने पर तोतेने कहा—

"हमें पशु-पक्षियोंकी भलाईकी बातें सोचनी हैं। इसलिए जो भाई-बहन उपयोगी सुझाव देना चाहते हैं, सम्मेलनमें पेश करें। समर्थन और अनुमोदन होनेके बाद सम्मेलन उसपर विचार करेगा।"

तोतेकी बात सुनकर गजराजसे न रहा गया। वह तनिक आवेश भरे स्वरमें बोला—"तोता राम, तुम केवल मनुष्यों-जैसी बोली ही नहीं बोलते। हर बातमें उनकी नक़ल भी करते हो। तुम यह बिल्कुल भूल गये कि हम जहाँ बैठे हुए हैं, वहाँ मनुष्यों-जैसी नक़लो-हरकत करना पाप है।"



गजराजकी बातको सुनकर सभी एक स्वरसे बोले—"बेशक, बेशक।"

भालूने गजराजकी बातको पुष्ट करते हुए कहा—"हमारे दिलोंमें जो बात उठेगी, उसे हम ज़रूर कहेंगे। समर्थन और अनुमोदनका अड़ंगा लगानेकी ज़रूरत नहीं। एक भी पशु-पक्षीका दुःख-सुख समूचे पशु-पक्षी समाजका दुःख-सुख है।"

भालू अपनी बात पूरी कह भी न पाया था कि एकाएक सम्मेलनमें आतंक-सा छा गया। सभी पशु-पक्षी जिस ओर देखने लगे, वहाँ एक सर्प फन फैलाये दोनों जीभ निकाल-निकालकर आग्नेय नेत्रोंसे पशु-पक्षियोंको घूर रहा था। सन्नाटेको भंग करते हुए मयूर बोला—"यह मनुष्योंका देवता हमारे सम्मेलनमें क्यों आया है? मनुष्य तो अपने बन्धुओंका ही रक्त पीता है, परन्तु उसका यह देवता तो अपनी सन्तानको भी भक्षण कर जाता है। ऐसे कुलसंहारीको फ़ौरन् सभासे निकाल दिया जाय।"

सर्प अपनी सफ़ाईमें कुछ कहना चाहता था, लेकिन गरुड़, नेवले, बिलाव आदिके एक साथ विरोध करनेपर उसे मजबूरन जाना पड़ा। मयूरके इस विरोधकी प्रशंसा करते हुए सिंह बोला—"यह माना कि हम पशु-पक्षियोंमें कितने ही मांस-भक्षी भी हैं। लेकिन वे बन्धु-घातक या सन्तान-भक्षी नहीं। अच्छा ही हुआ जो सर्पराजको भगा दिया। इस सम्मेलनका इस पातकीसे क्या वास्ता?"

सिंहके उक्त बोल बन्दरको न भाये। वह साहस करके बोला—"बुरा न मानना वनराज, तुम्हीं कहाँके भले हो। अपने पेटके लिए रोज़ाना वनचरोंको मार-मारकर खाते हो। आप किस मुँहसे सर्पकी बुराई करते हैं?"

सिंह अपनी सफ़ाई देना ही चाहता था कि बया चट बोल पड़ी—"वानर, पहिले तुम मनुष्य थे, इसीलिए इतनी मूर्खतापूर्ण बात कह सके हो। मालूम

होता है कि अभी तक पुराने संस्कार मिटे नहीं ? तुम यह भूल गये कि सिंहराज मांस-भक्षी होते हुए भी पेटके लिए सजातीय-वध कभी नहीं करते। वे अपने पेटकी आग उसी इन्सानी-ख़ूनसे बुझाते हैं, जो दूसरोंके शोषणसे इतना ज़हरीला हो गया है कि घास पर पड़े तो वह भी जल जाये। इन्सानी ख़ून न मिलनेपर इन्सानोंकी संगतिमें रहनेवाली, भैंस, गाय, बकरी आदिका उपयोग करते हैं। जब वे नहीं मिलते तब कई-कई रोज़ भूखे पड़े रहनेके बाद मजबूर होनेपर हिरन-खरगोशको सहमते हुए लेते हैं। ये मनुष्योंकी तरह द्वेष या कौतुक वश किसीका वध नहीं करते। पेट भरा हो तो दुनियाकी निआमतें सामनेसे गुज़र जाने पर आँख उठाकर भी उस तरफ़ नहीं देखते।"

बया अभी बोल ही रही थी कि पशु-पक्षी एक साथ चिल्ला उठे--"वानर! तुम अपने शब्द वापिस लो, तुमने व्यर्थ लांच्छन लगाकर वन-राजका अपमान किया है। उनका अपमान हम सबका अपमान है। तुम्हारी सूरत और वाणीसे मनुष्यताका आभास मिल रहा है। इस तरहके व्यर्थके छिद्रान्वेषण मनुष्य ही कर सकता है, हमें शोभा नहीं देता।"

सम्मेलनमें विरोधका बवण्डर उठते देख सिंह गम्भीर और संयत होकर बोला—"शान्त-शान्त, साथियो, सम्मेलनमें सभीको बोलनेका पूरा अधिकार है। ध्यान रहे, हम पशु हैं, मनुष्य नहीं। मनुष्योंकी बातोंसे मनुष्योंका अपमान होता है। पशु-पशुकी बातका बुरा नहीं मानते।"

सिंहके इस कथनसे साधु-साधुका घोष थोड़ी देर गूँजता रहा। शान्ति होने पर वानर क्षमा याचनाके स्वरमें बोला—"सज्जनो! किसी युगमें हम मनुष्य रहे होंगे, किन्तु अब हम मनुष्य क़तई नहीं हैं। हममें एक भी मनुष्यों-जैसा दुर्गुण नहीं है।"

मैना शेख़ीमें बोली—"वाह वानर भाई! तुमने यह एक ही दूनकी

हाँकी। भला तुममें कौन-सा दुर्गुण मानवों-जैसा नहीं है। केवल पूँछ निकल आनेसे क्या होता है ? तुम मनुष्योंकी तरह विषयी, लोलुप, चंचल और स्वार्थी हो। यूँ मरे हुए अपने बच्चेको छः महीने गोदमें लिये फिरते हो, परन्तु उसके मुँहका दाना भी निकालकर खा जाते हो। मनुष्योंकी तरह तुम भी अपने सजातीयोंसे लड़ते-झगड़ते हो। भूख न होने पर भी केवल कौतुकवश मूक पक्षियोंके अण्डे-घोंसले बरबाद करते रहते हो। जिस स्थानमें रहते हो, उसे ही वीरान कर डालते हो। भरी फ़सल उजाड़ देते हो। कोई नसीहत करे तो उसे ही नष्ट कर देते हो।"

सभी पशु-पक्षी—"बेशक-बेशक।"

वानर झेंपते हुए बोला—"क्षमा साथियो, मैनाका अभियोग मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन मैं आप सबको यक़ीन दिलाता हूँ कि इन बुराइयोंके होते हुए भी हममें अनेक ख़ूबियाँ भी मौजूद हैं। हम आपसमें कभी-कभी लड़ते ज़रूर हैं, लेकिन दूसरोंके मुक़ाबिलेपर हम सब एक हो जाते हैं। हम मनुष्योंकी तरह अपने बन्धु-बान्धवोंपर आई आफ़तसे न प्रसन्न होते हैं, न समाज-द्रोह करते हैं और न शत्रुसे मिलते हैं। हम उनकी तरह संचय भी नहीं करते। हम अपने नेताको नेता मानते हैं। उसकी आज्ञाका उल्लंघन स्वप्नमें भी नहीं करते। हमारी शक्ल-सूरत धीरे-धीरे बदल रही है। आशा है समस्त अवगुण भी धीरे-धीरे जाते रहेंगे। आपने हम पर तो मनुष्य-समानताका दोष लगाया, किन्तु श्वानको कुछ नहीं कहा, जो उसके जूठे टुकड़ों पर दिन-रात उसके आगे पूँछ हिलाता रहता है।"

हिरन—"पूँछ ही नहीं हिलाता, उसके संकेत पर सजातीयोंसे लड़ता रहता है।"

शूकर—"और अन्तर्जातीयों पर भी आक्रमण करता रहता है।"

**खरगोश**—"इन लोगोंके लिए सजातीय और अन्तर्जातीय क्या, यह तो भूखमें अपने बच्चोंको भी चबा डालते हैं।"

**चीता**—"यह मनुष्योंका सी० आई० डी० है, इसे सम्मेलनसे भगाया जाय।"

**श्वान**—"दुहाई है सरदारो, हमारी अरदास सुन लो, फिर जो चाहे फ़ैसला करना। हम इन्सानी आबादीमें रहते-रहते, उनका नमक खाते-खाते अनेक अवगुण अपना चुके हैं। फिर भी पशुओचित बहुत-से गुण अब भी मौजूद हैं। हम उनकी तरह न कामुक हैं, न नमक-हराम हैं, न रक्षक भेषमें भक्षक हैं। जो तनिक-सा भी हमपर अहसान कर देता है, जीवन भर हक़ अदा करते रहते हैं। हम जानपर खेलकर उपकारीकी सेवा करते हैं।"

**हंस**—"मेरी नम्र सम्मतिमें एक-दूसरे पर छींटा-कशी करनेके बजाय हमें मुख्य लक्ष्यकी ओर अब ध्यान देना चाहिए।"

**सब पशु-पक्षी**—"यथार्थ-यथार्थ।"

**गर्दभ**—"मुझे इस बातका बेहद मलाल है कि मनुष्य मुझे गधा कहता है। मैं उसकी एक पाई ख़र्च कराये बग़ैर जंगलमें घास-पातीसे पेट भर लेता हूँ। हर मौसममें दिन-रात उसके काममें जुटा रहता हूँ। फिर भी वह मुझे डंडोंसे पीटता रहता है, गधा कहकर मेरा उपहास करता है।"

**गजराज**—"यह सचमुच बहुत लज्जाकी बात है। इतने सरल और परिश्रमीको गधा कहना कदापि योग्य नहीं है।"

**चीता**—"मनुष्यके लिए क्या योग्य है और क्या अयोग्य, इससे हमें क्या मतलब? वह योग्य बात करता ही कौन-सी है, जो हम उसकी अयोग्य बातोंका उल्लेख करें?"

**सब**—"तब क्या करना चाहिए।"

**चीता**—"जो निठल्लोंके लिए श्रम करेगा और बदलेमें कुछ न लेगा,

उसे मनुष्य क्या, सारा संसार गधा कहेगा। इससे बढ़कर गधेपनकी बात और क्या हो सकती है? गर्दभराजको चाहिए कि वह हजरते-इन्सानके चक्करसे निकलकर हमारी तरह स्वच्छन्द विचरण करे, फिर देखें उसे कौन गधा कहता है?"

सब—"बेशक-बेशक"।

सिंह—"साथियो, हज़रते इन्सानने हम सबको ग़ुलाम बनाने और मिटानेका पक्का इरादा कर लिया है। हमारे ही समाजके घोड़े, हाथी, भैंस, गाय, बकरी, श्वान आदिको ग़ुलामीकी जंजीरोंमें जकड़ लिया है। तोता, मैना, बुलबुलको भी फांसता रहता है। हमारे बहुत-से सजातीयोंको मारकर खा जाता है। जो खाये नहीं जा सकते, उनपर बोझा ढोता है। पिंजरों, कटघरोंमें बन्द करके रखता है। अजायबघरों और सरकसोंमें शेखी बघार-बघारकर हमारा प्रदर्शन करता है। ईमानकी बात तो यह है कि अब वह अपने सिवा संसारमें किसीको रहने देना नहीं चाहता। अपने मौज-शौक़के लिए पर्वतोंको तोड़-फोड़ कर ज़मीनसे मिला रहा है। दरियाओंको बाँध रहा है। वनों-जंगलोंको काट रहा है। अब आप सब भाई-बहन बतायें कि हम सब इसके चंगुलसे कैसे बचकर रहें और रहें भी तो कहाँ रहें?"

चीता—"बड़े भाईने पशु-पक्षी समाजकी समस्याओंका बहुत ही संक्षेपमें सुन्दर ढंगसे उल्लेख कर दिया है। मुझे केवल इतना कहना है कि जब वह स्वयंको ग़ुलाम कहलाना पसन्द नहीं करता, तब उसने हमारे कुछ भाई-बहनोंको ग़ुलामीकी जंजीरमें क्यों जकड़ रखा है? समानताका हिमायती हमारे साथ असमानताका यह दुर्व्यवहार क्यों कर रहा है? और अगर उसे अपने बलका घमण्ड है तो मर्दानावार आकर हमसे लड़े। यह कहाँ की शराफ़त और बहादुरी है कि धोखे-छलफ़रेबसे छिप-छिपकर हम निहत्थोंपर अस्त्र-शस्त्रों-द्वारा गोलके गोल टूट पड़ें, और इस कायरतापूर्ण हमले

को बहादुरीका नाम दिया जाय। अगर हज़रते-इन्सानको अपने बलका ज़ोम है तो सामने आकर हम निहत्थोंसे निहत्था लड़े। यह कहाँकी मर्दानगी है कि मुँहमें तिनका लिये हुए हिरन, खरगोश जैसे कोमल और निरीह पशुओंका कई-कई मनुष्य मिलकर हथियारोंसे मुक़ाबिला करें। आराम करते पक्षियोंको धराशायी करें।"

हंस—"साथियो, मनुष्य जातिको अपने बल और ज्ञान पर बहुत घमण्ड हो गया है। मगर घमण्डीका सर कभी-न-कभी ज़रूर नीचे होता है। यह माना कि वह संसार-विनाशके अनेक उपाय निकाल रहा है। मगर आप यक़ीन रखिये कि ये सब उपाय उसीका नाश करेंगे। मकड़ी औरोंको फँसानेके लिए जाला बुनती है, परन्तु स्वयं उसमें फँस जाती है। मनुष्योंने हमें सतानेको शुरू-शुरूमें हथियार बनाये, परन्तु अब उन्हीं हथियारोंसे वे परस्पर लड़ने लगे हैं। एक-एक गोलेसे लाखों मनुष्योंकी हत्याएँ की जाने लगी हैं। जो दूसरोंको गेरनेके लिए गड्ढा खोदता है, उसके लिए भी खुदा हुआ कुआँ तैयार रहता है। आप सब निर्भय होकर विचरण करें, मानव हमारा क्या समूल नाश करेगा, स्वयं ही परस्पर लड़कर मिट जायगा।"

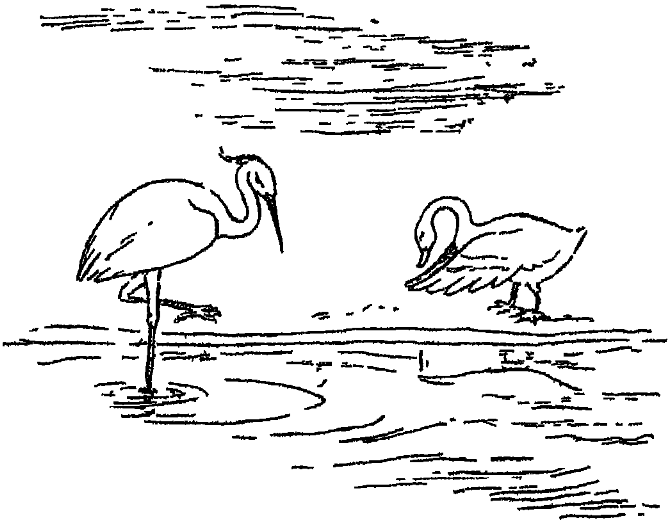
हंसके विचार सभीको पसन्द आये। अन्तमें कोयलके इस गानके बाद सम्मेलनका कार्य समाप्त हुआ।

> **ज़ुल्म जो ढायेगा इक दिन याद रख।**
> **वह सज़ा पायेगा इक दिन याद रख॥**
> **ज़ुल्मके बदले मिलेंगे जब उसे।**
> **वह भी दिन आयेगा इक दिन याद रख॥**
> **मेटकर हमको कोई क्या पायगा।**
> **ख़ुद ही मिट जायेगा इक दिन याद रख॥**

**१४ अप्रैल १९५६ ई०**

# हंस और बगला

एक हसनी मानसरोवर-तट पर चहल-कदमी कर रही थी कि उसकी दृष्टि एक पाँवगे खडे ध्यानमग्न बगले पर पडी। हसनीने पहले कभी बगला नही देखा था। वह उसके मौन शान्त और शुभ्र-रूपसे बहुत प्रभावित हुई। समीप पहुँचकर नतमस्तक हो प्रणाम करके बोली—"योगिराज ! आपका ध्यान, तप, तेज सभी अलौकिक है। आप तो कैलास-वासी कोई सिद्ध-तपस्वी जान पडते है।"



बगलेने अपनी यह अभूतपूर्व अभ्यर्थना देखी-सुनी तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह अपने मायावी भावोको नियन्त्रित करके बोला—

"कल्याणी! यह आपके हृदयकी स्वच्छता है, जो मुझ जैसा अधम इस तरह प्रतिबिम्बित हो रहा है। अन्यथा **"मो सम कौन कुटिल खल कामी!"**

हंसनी बगलेके पाँव तलेकी मिट्टी अपने सरपर लगाते हुए गद्गद कंठसे बोली—"धन्य हो महात्मन्! धन्य हो। अहंकार-भावको शरीरसे आपने उसी तरह फेंक दिया है, जिस तरह रामने शिव-धनुष तोड़कर फेंक दिया था।"

बगला हंसनीके प्रशंसात्मक वाक्योंसे पुलकित हो उठा, फिर भी संयत होकर बोला—"सुवचने, ऐसा न कहो। मैं तो एक पतित तुच्छ प्राणी हूं। मन बड़ा चंचल और पामर है। इसे एकाग्र रखनेके जितने प्रयास करता हूँ, उतना ही अधिक बन्दर समान उछल-कूद करता है, उत्पात मचाता है।

**"निस-वासर यह भरमति इत उत अगर गही न जाय।"**

हंसनी विनीत होकर बोली—"सिद्धेश्वर! पतित-पावन होते हुए भी अपनेको पतित समझ रहे हैं। यह आपकी महानता है। **हीरा मुखते कब कहे लाख हमारो मोल।** आपके दर्शनोंमें मेरा जन्म सार्थक हुआ।"

बगला तनिक और संकोची भाव लाकर बोला—"भद्रे! कैलासगार शिवके सान्निध्य जीवन-यापन करनेके कारण आप मुझे तपस्वी, योगिराज, सिद्धेश्वर आदि कुछ ही समझ लें, परन्तु मैं वास्तवमें क्या हूं, यह मैं ही जानता हूँ। **मैं हूँ पतित शिरोमणि देवी।"**

बगलेकी मायावी बातोंमें उलझकर हंसनी कातर होकर बोली—"जीवन्मुक्त आपकी यह साधना स्पृहणीय है। आप दया करके इसी सरोवरको अपने तप-तेजसे सदैव आलोकित कीजिये। आपके आहारका समुचित प्रबन्ध कर दिया जायगा, दीनबन्धु!

हंसनीके अकस्मात् आगमनसे बगलेके आहारमें अन्तराय पड़ रहा था।

वह हंसनी पर अपना वास्तविक रूप प्रकट नहीं करना चाहता था। जो उसे इतना उच्चकोटिका समझ बैठी है; उसीके समक्ष उसे तुच्छ होनेका साहस न हुआ, किन्तु अधिक ठहरनेसे क्षुधा रोकना असम्भव हो जायगा। और वास्तविक रूप खुल जायगा, इसी आशंकासे वह बोला—"एक ही स्थानमें रहना सन्तोंके लिए धर्मशास्त्रमें वर्जित है देवी! इस क्षणभंगुर संसारमें क्षण-क्षण ही सर्वत्र विचरना उपयुक्त है। अधिक ठहरनेसे मोह-ममता बढ़ते हैं, और यही मोह-ममता संसार-भ्रमणके कारण हैं।"

बगलेको प्रस्थानके लिए उद्यत देख हंसनी अधीरतापूर्वक बोली—"कैलास-वासी, तनिक ठहरिये। मैं अपने जीवन-साथीको बुला लूँ, ताकि वे भी आपके दर्शनोंसे कृतकृत्य हो सकें।"

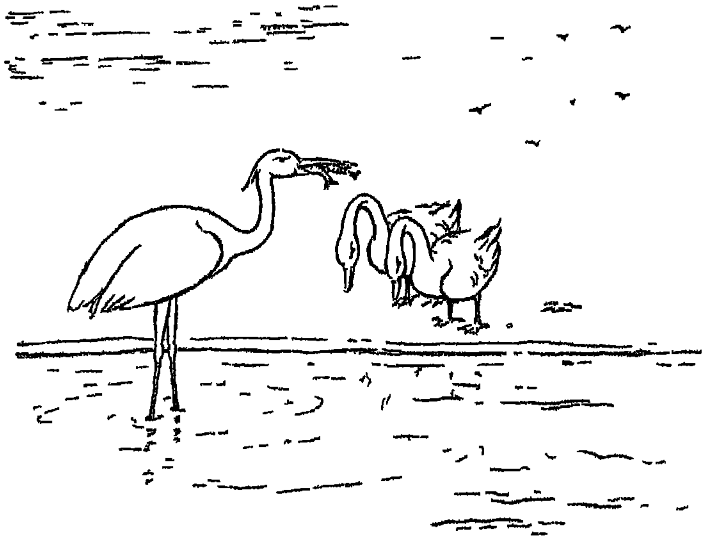
बगलेको क्षुधा सता रही थी, अतः तनिक रूक्ष स्वरमें बोला—"शुभे! क्षमा करना, स्वेच्छासे हम किसीको दर्शन नहीं देते। इससे आत्म-विज्ञापनकी गंध फैलती है। अहंभावका उदय होता है।"

हंसनी रास्ता रोककर बोली—"प्रभो, तनिक ठहरिये, मैं आपको भेंट स्वरूप मणि-मुक्ता ले आऊँ। यूँ रिक्त हस्त नहीं जाने दूँगी।"

बगला क्षुधासे पीड़ित हो रहा था। फिर भी वह व्यग्रता प्रकट न करके शान्त स्वभाव बोला—"नहीं, मधुरभाषिणी! अब मैं माया-जालमें नहीं फँसूँगा। तन-पोषणके लिए अनेक जन्म-जन्मान्तरोंसे—**भरि-भरि उदर विषयको धायो जैसे कूकर ग्रामी।** गुरु-कृपासे मेरे अन्तर्चक्षु खुल गये हैं। मैं अब मोहान्धकारमें नहीं भटकना चाहता। अच्छा भद्रे, धर्माशीष।"

बगला जबतक उड़कर ओझल न हो गया, तबतक हंसनी उसे अपलक देखती रही। फिर उसकी चरण-धूलिमें लोट-पोटकर रैन-बसेरे गई। हंसने वृत्तान्त सुना तो दर्शन न पा सकनेका उसे बहुत दुःख हुआ। कई रोज योगिराजकी चर्चा चलती रही।

दस-पाँच दिन बाद हंस-दम्पति बिहार करते हुए सरोवरसे तनिक दूर निकल गये। सहसा वहां खड़े हुए बगले पर हंसकी नजर पड़ी तो उसमें हंसनीके बताये हुए योगिराजसे बहुत कुछ साम्य मालूम हुआ। तनिक ध्यानसे देखा तो आभास हुआ कि योगिराज पानीमें चोंच डालकर कोई वस्तु गलेमें उतार रहे हैं। हंस हंसनीको संकेतसे योगिराजको दिखाना ही चाहता था कि बगलेने भी उनको देख लिया। वह पाखण्डी मुसकराते हुए बोला—"आओ भद्र, भद्रे आओ। वास्तविक लीला जब स्वयं आप लोगोंने अवलोकन कर ली है, तब भक्तोंसे गोपनीय रहा ही क्या? जैसे थल-चरोंके उद्धारके लिए पहले अवतार होते रहे हैं, वैसे ही इस कलियुगमें भने जलचरोंके उद्धारनिमित्त यह शरीर धारण किया है।"



हंस-हंसनीने मस्तक टेक कर प्रणाम करते हुए विनीत भावसे कहा—"पतितोद्धारक प्रभो, आप वास्तवमें अवतारी हैं। इन तुच्छ प्राणियोंके लिए कैलास-वास छोड़कर धराधाम पर आये, आपके इस परोपकारी स्वभावको हम शत-शत वन्दन करते हैं।"

बगला अब निःसंकोच मानसरोवरके तटपर मत्स्य-भक्षण करता रहता है और धर्मभीरु हंस-हंसनी उसकी संहार-लीलाको पतितोद्धार समझकर पुलक उठते हैं। पास इस संकोचसे नहीं जाते कि कहीं योगिराजकी एकाग्रता भंग न हो जाय।

४ मार्च १९५६ ई०

# बदनाम अगर होंगे.......?

एक रोज़ एक शुतुरमुर्ग़ने जंगलमें घूम-घूमकर बा-आवाज़ बुलन्द ऐलान किया—"आज हम आसमानमें उड़ेंगे, आज हम आसमानमें उड़ेंगे।"

ऐलान सुना तो जंगलके परिन्दे आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि यह दैत्याकार आसमानमें कैसे उड़ सकेगा? फिर भी कौतूहलवश सब एकत्र हो गये। परिन्दोंके आजानेपर शुतुरमुर्ग़ने अपने पंख इस तरह फैला दिये, जैसे उड़नेसे पूर्व वायुयानके डैने फैल जाते हैं। उसका यह विशाल रूप और उड़नेकी तैयारी देखकर परिन्दोंको विश्वास हो गया कि आज यह ज़रूर आसमानमें उड़ जायगा। फिर उन्हें ख़याल आया कि उड़नेके बाद यहाँ आये या कहीं सुदूर स्थानमें उतर जाये, इसलिए अभिनन्दन स्वरूप कुछ-न-कुछ ज़रूर होना चाहिए। अतः कोयलने पंचम स्वरमें अभि-नन्दन-गीत अलापा। क़ुमरी और बुलबुलने मिलकर मुबारकबादी ग़ज़ल छेड़ी, कबूतरोंने कत्थक-नृत्य और मयूरोंने लोक-नृत्य प्रस्तुत किया। तोतेने मांगलिक दो शब्द कहे, बयाने निर्विघ्न यात्राकी कामना की और मैनाने मेंहदीके पत्ते चबाकर तिलक किया। फिर सब अपने नेताके आकाश-गमनकी प्रतीक्षामें मौन खड़े हो गये।

शुतुरमुर्ग़ पंख फैलाये हुए बड़ी शानसे १०-५ क़दम ज़मीनपर चला, फिर पर समेटकर अपनी मादाको साथ लेकर रैन-बसेरेकी तरफ़ मुड़ गया। चलते-चलते रुँआँसी-सी मादा बोली—"नाथ, आपने आज यह क्या कौतुक किया? मैं तो शर्मसे गड़-सी गई।"

शुतुरमुर्ग़ रुखाईसे बोला—"इसमें शर्मकी क्या बात थी, यह तो हमारा एक अदना करिश्मा था। तुम इन चालोंको क्या समझो?"

शुतुरमुर्ग़की इस ढीठतापर मादा तुनककर बोली—"वाह अच्छा आपका करिश्मा रहा। सारे जंगलमें उड़ानकी शेखी बघारते फिरे, सब परिन्दोंमें ख़ूब वाह-वाही लूट ली और उड़नेके नामपर सिर्फ़ डैने फैलाकर रह गये और मुँह लटकाये चुपचाप डेरेके लिए खिसक लिये। इस ज़िल्लतसे बढ़कर निगोड़ी शर्मकी बात और क्या होगी।"

मादाको आवेशमें देखकर शुतुरमुर्ग़ने सहमते हुए जवाब दिया—"तुमने देखा ही नहीं कि मेरे क्षणिक वियोगके भयसे उन सबका मुख कैसा मलीन हो गया था और वे किन व्याकुल नेत्रोंसे मुझे देख रहे थे? मैं उन्हें ऐसी दयनीय स्थितिमें छोड़कर कैसे उड़ सकता था? भले ही मुझे उपहासास्पद होना पड़ा, किन्तु अपने साथियोंकी दिलजोईके लिए मुझे यह लाञ्छना-हलाहल पीना ज़रूरी हो गया था। अपनोंके लिए क्या मैं सम्मान एवं प्रतिष्ठाका इतना बलिदान भी न करता?"

पतिके मायाचारी रूपको जानते हुए भी मादा सहज भावसे बोली—"जब उड़ना हमारी सामर्थ्यके परे है, तब क्यों ऐसी लाञ्छना अकारण ओढ़ी?"

शुतुरमुर्ग़ने मादाकी आँखोंमें आँखें डालते हुए कहा—"तुम इसे लाञ्छना समझती हो? यही तो हमारी शान है। हम जो कहते हैं, वह किया नहीं करते, इस कामके लिए काफ़ी मूर्ख दुनियामें भरे पड़े हैं। हम नेता हैं, अनुयायी नहीं। हम सिर्फ़ कहते हैं, और सब उसका पालन करते हैं। यही सदासे होता आया है और यही हमेशा होता रहेगा?"

मादाको कुछ सूझ नहीं रहा था कि अब वह क्या कहे? फिर भी उसने साहस बटोरकर पूछा—"मगर यह उड़ानकी शेखी बघारनेसे क्या लाभ हुआ? सिवा जगहँसाईके?"

शुतुरमुर्ग़ चहककर बोला—"इसे तुम जगहँसाई कहती हो रानी!

अगर उड़ानका ऐलान न करता तो ये कम्बख़्त मेरा ऐसा शानदार सत्कार करते? छल-प्रपंच, धोखे-फ़रेबसे जैसे भी बने अपनी पूजा कराओ हमारे नेता-शास्त्रका यही मूल मंत्र है।"

"परन्तु नाथ हम कल कैसे पक्षी-समाजमें मुख दिखा सकेंगे? वे सभी हमें देख-देखकर उपहास करेंगे?" मादाने रुँधे कण्ठसे कहा तो शुतुरमुर्ग सगर्व बोला—

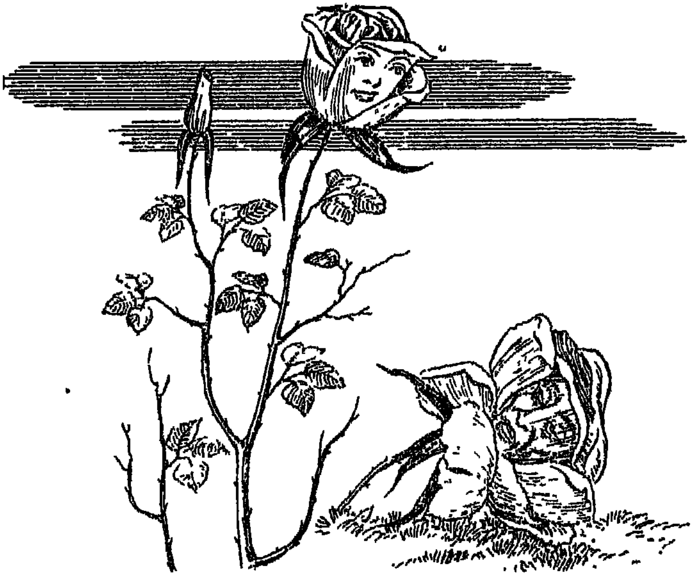
"तुम देख लेना वे मूर्ख हमारा उपहारा न करके आभार मानेंगे। क्योंकि उन्हें विश्वास है कि मैंने उनके हृदयको वियोग-व्यथाका आघात न पहुँच जाय, इसी लोकोत्तर भावनासे उड़ान नहीं भरी है। और तुम्हारी आशंकाके अनुकूल कुछ लफंगे खिल्ली उड़ायें भी तो अपना क्या बनता बिगड़ता है। तिरस्काररूपी हलाहल पीनेका हमें अभ्यास होना चाहिए। दुनिया भुलक्कड़ स्वभावकी होती है। धीरे-धीरे सब भूल जाती है। हम इसी शानसे विचरते रहेंगे। साथी हँसते हैं तो हँसें। यह एक दिनका स्वागत-सत्कार जीवनभरकी लाञ्छनाओंसे क़ीमती है।"

मादा निरुत्तर होकर पतिके इस बेहयाईके जीवनपर रातभर आँसू बहाती रही।

२८ अगस्त १९५६ ई०

# विषाक्त संसार

मुरझाया हुआ फूल घासपर पड़ा हुआ नव विकसित कलीकी मुसकान ईर्ष्यासे देख रहा था कि उन तितलियोंकी अठखेलियाँ और भौंरोंकी गरगंभियाँ उसमें न देखी गईं, जो कलतक उसके प्यारका दम भरते थे।



मुरझाया फूल मारे ईर्ष्याके घासपर इधर-उधर लुढ़कते हुए दिनभर सर धुनता रहा। शरीरको क्षत-विक्षत करता रहा। रात होने पर भी फूलने जब चैन न पाया तो उसकी इस विकलतापर नभको भी रुलाई आ गई।

नभके आँसू मुरझाये फूलपर गिरे तो उसके संतप्त हृदयको कुछ

सान्त्वना-सी मिली। नभकी इस समवेदनाको पाकर उसे कुछ-कुछ ढाढ़स-सा बँधा। तभी मुसकाती कलीका एक पत्ता गिरते देख वह हर्षोन्मत्त हो उठा। कलीकी भी अपनी जैसी गति होते देख उसके मुरझाये मुखपर स्मित-रेखा-सी दौड़ गई। तभी ओसने सकुचाते हुए कहा—

"कल तुम भी मुरझाये हुए फूलोंको देख हर्षोन्मत्त हो रहे थे। वायुने बार-बार तुम्हें संकेत किया कि 'बावरे, इस क्षणिक उल्लासपर इतराना उचित नहीं। यहाँ न जाने कितने फूल खिल-खिलकर मुरझा गये'; परन्तु तुम न माने, उलटे हवासे-ही उलझ पड़े। परिणाम-स्वरूप जमीनमें पड़े हुए सर धुन रहे हो। अपनी शोचनीय स्थितिपर रुदन कर रहे हो, परन्तु अपने नवागन्तुक बन्धुके पतनपर ईर्ष्यावश पुलक भी रहे हो। यह ईर्ष्यालु स्वभाव तो मनुष्योंका होता है, तुम्हें यह दुर्बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई बन्धु ! मालूम होता है हजरते-इन्सानकी परछाईं तुमपर भी पड़ गई है।"

"क्या मनुष्यकी परछाईं पड़नेसे उसके अवगुण भी प्रवेश कर जाते हैं बहन!" फूलने सहज स्वभाव प्रश्न किया।

ओस भीगे हृदयसे बोली—"हाँ, इसकी परछाईंसे पाताल स्थित लोक नरक हो गया। इसके छूनेसे क्षीरोदधि खारा समुद्र बन गया। सूर्य-चन्द्र घबरा कर नभमें चले गये। यह पर्वतोंको रौंदकर पृथ्वीमें मिला देता है। किलोल करते हुए दरियाओंको बाँध देता है। गाते हुए पक्षियोंको पिंजरेमें डाल देता है। मुँहमें तृण लिये हुए वनचरोंको धराशायी कर देता है। और अब इसकी कौतुक-प्रियता इतनी बढ़ गई है कि अपनी ही माँ-बहनको नग्न देखना चाहता है। अपने ही समूहका रक्त पीना चाहता है।"

मुरझाये फूलने मुसकरानेकी चेष्टा करते हुए कहा—"तब तो बहन, इस विषाक्त संसारसे छूटते हुए मुझे परम सुखका अनुभव हो रहा है।"

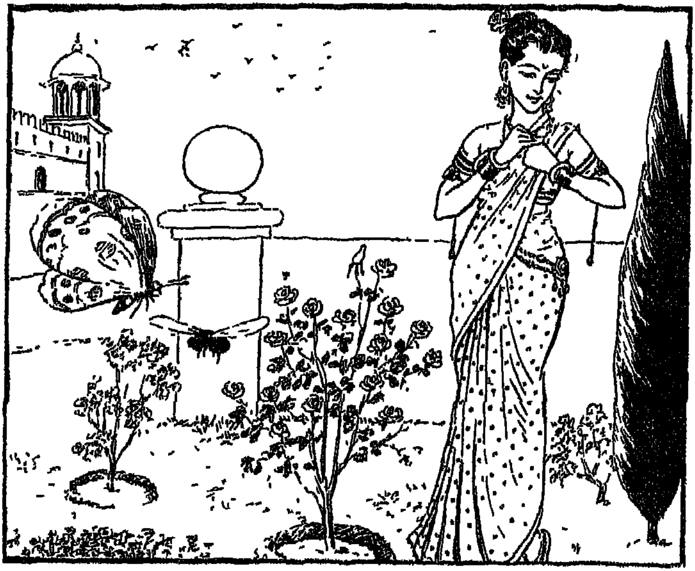
**१३ मार्च १९५६ ई०**

# चाहतका परिणाम

तितली और भौंरा अपनी-अपनी चाहतकी डींगें हाँक रहे थे। तितलीका कथन था—"फूल मुझे प्राणपणसे चाहता है। मेरे अतिरिक्त वह किसीकी तरफ़ देखता भी नहीं। मुझे आँखोंसे तनिक ओझल होते देख काँटोंपर लोटने लगता है। क्षणभरमें अपनेको लहू-लुहान कर लेता है, और जब मुझे आते देखता है तो झूमने लगता है। जितना मेरा प्रियतम रूपवान, कोमल और अलबेला है, उतनी ही मैं भी हसीन, शोख़ और नाज़ुक हूँ। हमें देखकर लोगोंको रश्क होता है, और एक तुम हो, कुरूप, अभागे, न कोई साथी, न कोई प्रेयसी। फिटमारे-से इधर-उधर भटकते फिरते हो।"

तितलीके व्यंग्यपर भौंरा भन्ना उठा। वह कुढ़कर बोला—"तुझे अपनी करनीपर शर्म आनेके बजाय नाज़ है। यह इस ज़मानेका करिश्मा ही कहना चाहिए, जो तुझ जैसी हरजाई प्रेमका दम भर रही है। तेरी इस दीदादिलेरी पर क्या कहा जाय? जब तू फूलोंके पाससे गुज़रती है, तो मारे ग़ैरतके वह सुर्ख़ हो जाते हैं। शर्मसे पसीने-पसीने हो उठते हैं, और काँटोंमें मुँह छिपानेको मजबूर होते हैं। रही मेरी बात, सो मैं श्याम ज़रूर हूँ; परन्तु तुझे क्या मालूम इस रंगमें कितनी कशिश होती है? जिधर निकल जाता हूँ, कलियाँ आँखें बिछाने लगती हैं। मन्द-मन्द मुसकानसे मेरा स्वागत करती हैं। मेरे रसिक स्वभावपर झूम-झूम उठती हैं। मेरे साँवले-सलोने रूपपर बलि-बलि जाती हैं। जिस तरफ़ भी प्रीतिका राग गुन-गुनाता निकल जाता हूँ, कलियोंपर जवानी छा जाती है। कहाँ मैं, कहाँ तू? मेरे प्रेमसे तेरे हरजाईपनकी क्या तुलना? मैं कलियों रूपी गोपिकाओंमें कन्हाई-जैसा और तू कंसके दरबारकी नर्त्तकी-जैसी।"

तितली भौरेके गर्वीले वचनोका प्रत्युत्तर देना ही चाह रही थी कि राजकुमारीने फूल तोडकर जूडेमे लगा लिया और कली सीनेपरकी साडीमे टाँक ली तो फूल एव कली दोनो ही अपने-अपने भाग्य पर इतराने लगे।



और तितली-भौरे दोनों खोजीखारे एक-दूसरेसे भिन्न दिशामें अपना-सा मुँह लेकर चलते बने।

३ मार्च १९५६ ई०

# झूठी शान

मधुमक्खी फूलसे उड़कर अपने छत्तेकी तरफ़ लौटनेको प्रस्तुत हो रही थी कि वहाँ एक ततैया आनिकला। पहिले तो वह मक्खीको देखकर भिन्नाया और इधर-उधर उड़ता रहा। फिर मनकी घृणा उँडेलते हुए बोला—



"तुम इतनी कुरूप और घिनावनी हो कि तुम्हारे पड़ोसमें रहना भी हमारे लिए संभव नहीं। यदि तुम्हें रूप नहीं मिला तो न सही, होली-दीवाली ही सही, कभी छठे-चौमास नहाकर शरीर तो स्वच्छ कर लिया

करो। तुम्हारे इस फूहड़ एवं बेढंगेपनसे हमें तो बहुत शर्म मालूम होती है। समस्त कीट-पतंग समाजमें तुम-जैसा कुरूप और घिनावना मुझे और कोई नजर न आया। तुम्हारी वजहसे उच्च-सोसायटीमें जाते हुए भी हमें तो झिझक मालूम होती है कि कहाँ हमारा कुन्दन-सा शरीर और कहाँ तुम्हारा यह बदरूप . . . !"

ततैया न जाने अभी कितनी डींगें हाँकता कि मधुमक्खीने जानेकी शीघ्रतामें बातके बीचमें ही मधुरतापूर्वक जवाब दिया—

"भाई! बनने-सँवरनेका हमारे पास समय कहाँ? जो पर-श्रमपर जीवित रहते हैं, उन्हें बनने-सँवरनेका समय मिल जाता है। तुम हमारी चिन्ता न करो। हम तो किसी ऊँची-नीची सोसायटीमें कभी जा नहीं पातीं। तुम निःसंकोच तितली-भौंरोंके साथ वहाँ जाया करो। यदि मौज-मजासे थोड़ा-बहुत अवकाश मिले तो स्वावलंबी बननेका भी प्रयास किया करो। तन मैला रहता है तो रहने दो, दूसरोंके अहसानसे मनको मैला न होने दो। ऊँचोंके समीप बैठना है तो स्वयंको भी उच्च बनाओ। क्षुद्र-स्वार्थी बने रहे तो सर्वत्र दुत्कारे जाओगे।"

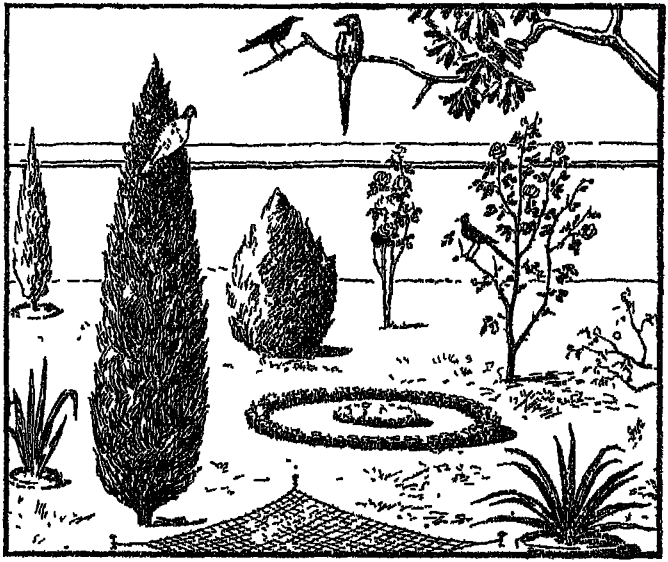
मधु-मक्खी तो शीघ्रतासे अपने छत्तेकी तरफ़ चलती बनी, मगर ततैया घण्टों मन ही मन भुन-भुनाता रहा। उसकी भुनभुनाहटसे सर इक़बालके इस शेरका कुछ-कुछ आशय ध्वनित हो रहा था—

**ख़ुदाकी शान है ना-चीज़ चीज़ बन बैठे।**
**जो बेशऊर थे यूँ बा-तमीज़ बन बैठे॥**

**४ मार्च १९५६ ई०**

# मेर-तेरके झगड़े

कुमरी सरूके पेड पर और बुलबुल गुलाबके पेडपर बैठी हुई परस्पर वाद-विवादमे उलझी हुई थी कि समीप पेड़पर बैठे हुए तोतेको हँसी आ गई। पास ही बैठी हुई मैनाने हँसीका सबब पूछा तो किसी तरह हँसीको जब्त करते हुए तोता बोला—"भाभी! यह दोनों



इस बातपर झगड़ रही है कि चमनका वास्तविक अधिकारी कौन है? दोनों ही अपना-अपना अधिकार प्रमाणित करनेके लिए जमीन-आसमानके कुलाबे मिला रही हैं। बुलबुलने दलील पेश की है कि

हम लोगोंने चमनको अपने रक्तसे सींचा है। तभी फूलोंपर यह निखार आया है।" क़ुमरी उसकी दलीलकी धज्जियाँ उड़ानेके प्रयत्नमें फ़रमा रही है—"रक्तसे सींचा है तो कौन-सी अनोखी बात की है। सैयादने तुम लोगोंको मारकर गिरा दिया तब खादमें मिलनेसे तुम्हारा कुछ उपयोग हो गया तो इसमें तुम्हारा अहसान क्या हुआ? यह तो मरी हुई बछिया बाभनके सिर वाली युक्ति हुई। चमनके वास्तविक स्वामी हम हैं, हमने अपने नग़मोंसे इसमें जान फूँकी है। चमनपर यह जवानी हमारी बदौलत छाई हुई है।"

मैनाने उत्सुकतासे पूछा—"तो फिर इसमें हँसनेकी बात क्या हुई?"

"हँसनेकी बात नहीं है?" तोतेने पेड़के नीचेकी तरफ़ संकेत करते हुए कहा—"सैयाद-द्वारा बिछाया हुआ जाल ये देख नहीं रही हैं, और मेर-तेरके झगड़ेमें उलझी हुई है।"

हैं ताकमें उक़ाब[1] तो शहबाज़[2] घातमें।
हमलेसे याँ अजलके[3] नहीं एक दम फ़राग़[4]॥
बुलबुलो[5]-क़ुमरीमें है, झगड़ा कि चमन किसका है।
कल बता देगी ख़िज़ाँ यह कि चमन किसका है॥

—हाली

यह चमन यूँ ही रहेगा और हज़ारों जानवर।
अपनी-अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जायेंगे॥

—अज्ञात

२ मार्च १९५८ ई०

---

[1]गिद्ध, [2]बड़ा बाज़, [3]मृत्युसे, [4]चैन, फ़ुरसत, [5]यहाँ शायरने 'कबक' लिखा है, परन्तु हमने प्रसंगवश कबकके बजाय बुलबुल बना देनेकी धृष्टता की है।

# अनधिकार चेष्टा

बुलबुल अपनी बच्चीको गरमी, बरसात सर्दीके, हेर-फेर समझा चुकी थी। नग़मेकी तालीम भी पूरी दे चुकी थी कि यकायक बहारमें पतझड़के आसार झलकते-से दिखाई दिये तो कलेजा मसोसकर रह गई।

बच्चीके चपल नेत्रोंसे माँकी यह व्यथा ओझल न रह सकी। उसने मिन्नत-समाजत करके किसी-न-किसी तरह माँकी आशंकाका कारण और पतझड़के परिणाम मालूम कर ही लिये। वह अबोध तड़प-तड़पकर बोली— "माँ यूँ मन-ही-मन घुटनेसे क्या लाभ? मैं अभी जाकर मालीको सूचित किये देती हूँ ताकि वह सावधान हो जाये।"

बुलबुल बच्चीको उड़नेसे रोकती हुई बोली—नहीं बन्नो! यह उचित नहीं।"

"क्यों माँ?" बच्चीने तनिक मचलते हुए पूछा। बुलबुलने उसके सर पर प्यार करते हुए कहा—"पगली, हम नग़म-ए-बहाराँ छेड़नेके लिए हैं। पतझड़ आनेकी मनहूस ख़बर तो उल्लू ही चारों तरफ़ फैला देंगे।"

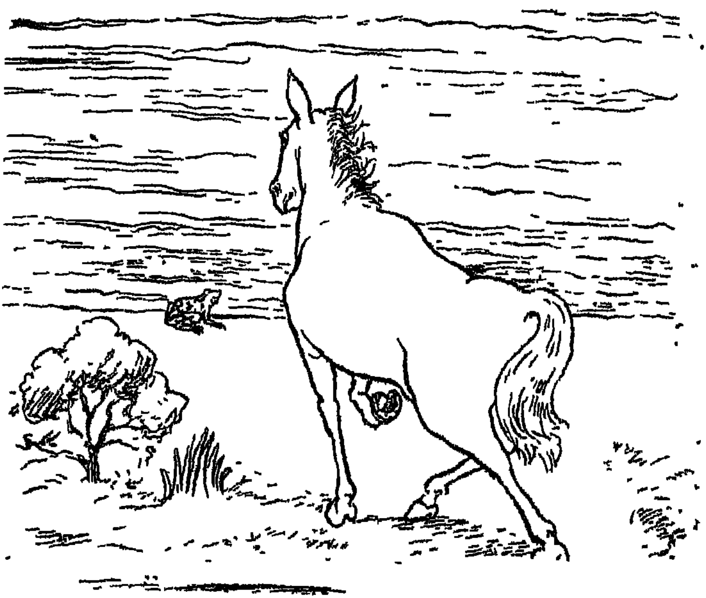
बच्चीके मनमें माँकी बात घर न कर सकी। वह अवसर पाकर चुप-चाप निकलकर बाग़वाँके झोंपड़ेके समीप पेड़पर बैठ कर आमदे-ख़िज़ाँसे बाग़वाँको बेदार करने लगी।

बाग़वाँ घरवालीसे लड़-झगड़कर रातको देरसे सोया था। वह सुबहे-नसीमकी मीठी-मीठी थपकियोंका आनन्द पूरी तरह ले भी न पाया था कि सुबह-सुबह पतझड़के आगमनकी मनहूस ख़बर सुनकर क्रुद्ध हो उठा और पासमें रखी ग़ुलेल मारकर बच्चीको धराशायी कर दिया।

२८ अगस्त १९५६ ई०

# औक़ातके बाहर

एक घोड़ा सरोवरके किनारे जल पीने जाया करता था। उस सरोवरके किनारे रहने वाली मेडकीको घोड़ेके खुरमें लगी हुई नाल बहुत भाई। घोड़ा जब भी पानी पीने आता, मेडकी उसकी नाल और चालको



ललचायी नजरोंसे देखती रहती। नालकी चमकने और खट-पटकी पग-ध्वनिने उसे बहुत आकर्षित किया। धीरे-धीरे उसका विश्वास हो गया कि नालकी बदौलत ही घोड़ा इतनी अच्छी चाल चलता है। अतः एक दिन उसने साहस बटोरकर पूछा—

"घोड़े भाई! यह नाल तुमने कहाँ लगवाई?"

घोड़ेने आश्चर्यचकित होकर मेडकीकी तरफ़ देखा और उपेक्षा भरे स्वरमें कहा—"बी मेडकी, यह तुम किस लिए पूछ रही हो?"

बी मेडकी पुलककर बोली—"मैं भी इसी तरहकी नाल लगवाना चाहती हूँ।"

घोड़ा मेडकीकी इस मूर्खता पर और उसके नन्हेंसे वजूदकी तरफ़ हैरतसे देखता रह गया। उसने कौतूहलवश पूछा—"तुम नाल कहाँ लगवाओगी?"

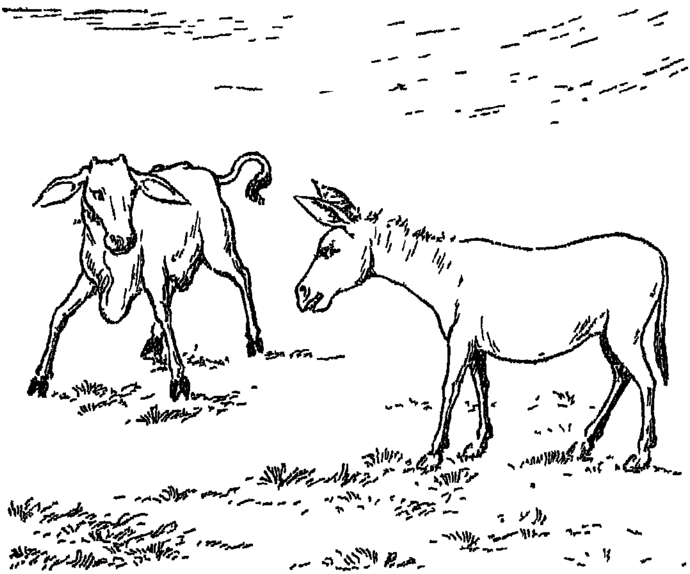
मेंडकी तिनककर बोली—"यह भी तुमने अजीब सवाल किया? तुम्हें दिखाई नहीं देता कि मेरे पाँव इतने कोमल हैं कि घासपर चलते हुए भी छिलते हैं। सोचती हूँ कि मैं भी नाल जड़वा लूँ तो तुम्हारी तरह दुलकी चला करूँ।"

मेडकीकी इस शेखीसे चिढ़कर घोड़ेने उसपर पाँव रख दिया तो मेडकी एक चींकी आवाजके साथ नालके अन्दर ही विलीन हो गई।

९ मार्च १९५६ ई०

# एक समान

एक वैसाखनन्दन जंगलमे घास चर रहा था। गो-वत्सको समीपमे जाते हुए देखकर बोला—"कहिये भाई साहब, कहाँ तशरीफ ले जा रहे है?"



गो-वत्सको गधेका यह सम्बोधन कुछ खल-सा गया। उसने रुखाईसे उत्तर दिया—"तुम सचमुच गधे हो। तुमने मुझे भाई साहब किस अधिकारसे कहा?"

"समान धर्मी, समान जाति होनेके नाते।"

"मुझमें और तुममें समानता?" यह तुमने खूब गधेपनकी कही।"

"भाई साहब, आप तो व्यर्थमें उछलते हैं। आपमें और मुझमें कहीं भी तो अन्तर नहीं है। मेरे जैसे ही तुम भी गोरे-चिट्टे हो। मेरे समान ही तुम्हारे पूँछ और खुर हैं। मेरी ही तरह तुम्हारे भी सींग नहीं उगे हैं। आहार-विहार भी समान हैं। मनुष्य हम दोनोंपर बोझ लादता है। क्रोधावेशमें हम दोनोंका ही वह स्मरण करता है। कभी किसीको गधा कहता है और कभी किसीको बैल कहता है।"

गो-वत्स क्या जवाब देता? वैसाखनन्दनको मुँह लगानेके बजाय चुप-चाप चले जाना ही उसने श्रेयस्कर समझा।

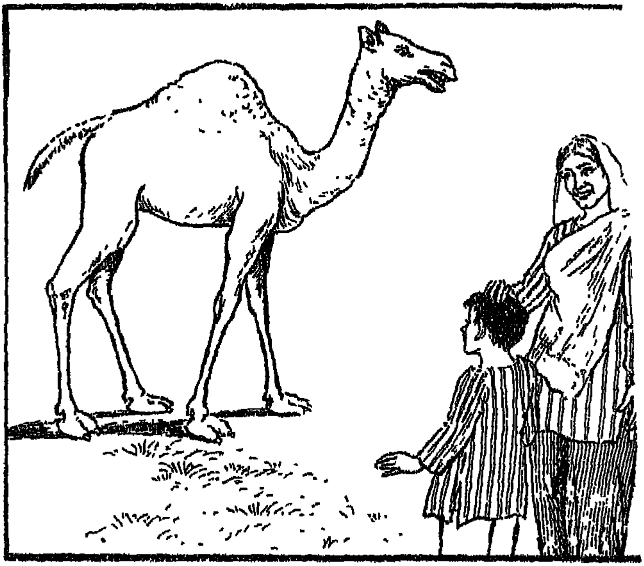
**१० मार्च १९५६ ई०**

# घमण्ड कबतक ?

"नानी, यह ऊंट इतना उछल-कूद क्यों रहा है ?"

"इसे अपनी ऊँचाईपर घमण्ड हो गया है बेटे !"

"यह घमण्ड कब दूर होगा, नानी ?"



"जब यह किसी पहाड़के नीचे-से निकलेगा, इसका समस्त घ पानी-पानी हो जायेगा।"

१ मार्च १९५६ ई०

# अज्ञात शहीदोंकी यादमें

पतंगा—"कहिये भाई साहब, आज कहाँ तशरीफ़ जा रही है ?"

जुगनू—"क्षमा करना भैयाजी, मैं अपनी धुनमें उड़ा जा रहा था। शीघ्रतामें आपकी तरफ़ ध्यान न दे सका, इस बेअदबीके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

पतंगा—"आप तो भाई साहब, शर्मिन्दा करते हैं, भला अपने छोटोंसे भी कहीं इतनी नम्रताका व्यवहार किया जाता है। सभ्यता-विनम्रताका गुण कोई आपसे सीखे। हाँ तो भाई साहब आज किस शीघ्रतामें हैं ?"

जुगनू—"प्यारे भाई, हमारे समाजने निश्चित किया है कि आज रात भर उन अज्ञात शहीदोंकी यादमें चराँगा किया जाय, जो लोकोपयोगी कार्योंके लिए चुपचाप मिट गये। जिनकी न कोई समाधि है, न कोई क़ब्र, न कोई स्मारक, न कोई निशान।"

पतंगा—"बहुत सुन्दर, महान् और अभिनन्दनीय निश्चय किया है, आपकी समाजने, परन्तु उन सबके बलिदान-स्थलोंका पता कैसे मालूम होगा ?"

जुगनू—"इसका उपाय भी सूझ गया है। हम केवल उनके बलिदान-स्थलों पर ही चराँगा नहीं करेंगे। अपितु जहाँ वे जन्मे, बढ़े, पढ़े, परवान चढ़े, खेले-बैठे, उठे, खाये-पिये आदि उन सभी स्थानोंकी यात्रा करेंगे और जो भी स्थान मिलेगा वहाँ चराँगा करेंगे।"

पतंगा—"धन्य है आपकी इस नैतिक सूझ-बूझको। लेकिन भाई साहब, इतने शहीदोंके स्थानों पर सबका जाना सम्भव हो सकेगा ?"

जुगनू—"अवश्य, इसका भी सरल उपाय सोच लिया है। समूचे

संसारके जुगनू अपने-अपने क्षेत्रमें हुए शहीदोंके उक्त ज्ञात स्थानोंमें-से किसी भी स्थानपर एक-एक हज़ार जुगनू मिलकर चराँग़ा करेंगे। इस तरह एक साथ सामूहिक रूपसे यह चराँग़ा सफलतापूर्वक हो सकेगा।"

**पतंगा**—"अपनी चरण-रज लेनेकी आज्ञा दीजिए। आपका समाज अभिनन्दनीय है, जिसने इन उपेक्षितोंकी ओर भी ध्यान दिया। अन्यथा संसारमें कौन उन्हें याद रखता है। न्योछावर होनेवाले न्योछावर हो जाते हैं और जीवित उनकी लाशों पर पाँव रखकर राज्यासीन होते हैं।"

**जुगनू**—"प्यारे भाई, हमें अपना कर्तव्य देखना है? दूसरे क्या करते हैं, हमें इससे क्या सरोकार?"

**पतंगा**—बेशक, नेकी कर और कुएँमें डाल इसीको कहते हैं। आप जन-कल्याणकी आग लिये फिरते हैं। आपका यह आदर्श हम सबके लिए अनुकरणीय है।"

**जुगनू**—"यह आपका सौजन्य है, वरना हम क्या और हमारी औक़ात क्या? हँसते-खेलते बलि हो जानेवाले महान् वंशमें जन्म लेते हुए भी आप हमारी तनिक-सी बातकी इतनी सराहना कर रहे हैं। यह आपकी उच्चता और महानता है। आप हमारा उत्साह बढ़ा रहे हैं। अन्यथा आप जैसे बलिदानी-वंशजोंके समक्ष हमारी क्या हैसियत? अच्छा, नमस्कार।"

४ अप्रैल १९५६ ई०

# ताड़ और नारंगीका वृक्ष

अपने समीप शन्तरोंसे लदे पेड़को देखकर गगन-चुम्बी ताड़ बोला—

"तू कितना निरीह और तुच्छ है। बूटा-सा तेरा क़द है, फिर भी इतना बोझ लादे हुए जिये जा रहा है। कोई तुझे ढेला मारता है, कोई तेरे सीनेपर चढ़ता है, कोई तेरे अंग-प्रत्यंगको खींचता है। लेकिन तू सब कुछ सहन करता रहता है। तूने अपनेको क्यों इतना दीन-हीन और असहाय बना रक्खा है ? मेरी शरणमें रहते हुए भी यह दयनीय स्थिति ? आ तू मेरे समान सीना तानकर खड़ा हो, फिर देखूँ तेरी तरफ़ कौन देखता है ? देखनेवालोंके नेत्र चुँधिया न जायें तो मेरा जिम्मा।"

नारंगी-वृक्ष नत मस्तक जैसा खड़ा था, वैसा ही खड़ा रहा। जवाब उसे कुछ सूझ ही न पाया। उत्तर न पाकर ताड़ खीजकर बोला—"अरे तू बहुत ही ढीठ मालूम पड़ता है। चिकना घड़ा बना हुआ है, बोलता क्यों नहीं ?"

नारंगी-वृक्षसे अब भी कुछ कहते न बन पड़ा तो ताड़ क्रुद्ध होकर बोला—"निर्लज्ज, तू बहुत घुटा हुआ मालूम होता है। तू इतना पतित हो गया है कि ऊँचे उठनेकी बात भी तू नहीं समझ पा रहा है। तनिक मेरी तरफ़ आँख उठाकर तो देख। मेरी विशालता और अपनी तुच्छताकी तुलना तो कर। कहाँ मैं, और कहाँ तू ?"

नारंगी-वृक्ष अब भी मौन रहा। वह कहता भी क्या ? तभी वृक्ष परसे क़ुमरीने यह नग़मा छेड़ा—

जो नख़्ल[1] पुरसमर[2] हैं, उठाते वोह सर नहीं।
सरकश[3] हैं, वोह दरख़्त कि जिनपर समर[4] नहीं॥

---

[1]वृक्ष, [2]फलोंसे भरपूर, [3]उच्छृंखल, तने हुए, [4]फल-फूल।

क़ुमरीके नग़मेको सुनकर ताड़की बोलती बन्द हो गई। वह सूर्य-तापसे समस्त शरीरमें खुजलाहट महसूस करने लगा तो मन-ही-मनमें कहने लगा—"काश, मैं भी नारंगी-वृक्षके समान फल-पत्तोंसे लदा होता तो सूर्यकी मारसे तो बचा होता।

७ जुलाई १९५६ ई०

# शृगालोंका अधिकार

एक रात शृगाल-राजने एकत्र शृगालोंसे कहा—

हमारे उपदेशामृतको पान करनेके लिए पहिले जंगलके प्राय: सभी जीव आया करते थे। फिर धीरे-धीरे संख्या कम होती गई और अब देखता हूँ कि हम लोगोंके अतिरिक्त कोई भी नहीं आता। मानो हमारा अस्तित्व ही नहीं रहा है।

"इसमें किसीका दोष नहीं, यह सब हमी लोगोंकी वजहसे हुआ है।" एक वृद्ध जम्बुकने संजीदगीसे जवाब दिया।

"वह कैसे?" शृगाल-राजने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"हम समय-असमय, बात-बे-बात इतना अधिक बोलते रहे कि लोग ऊब उठे और तंग आकर उन्होंने सुनना छोड़ दिया।"

वृद्ध जम्बुककी उक्त यथार्थ बात शृगाल-राजको रुची नहीं। वह डपटकर बोला—"किसीके ऊब जाने या तंग हो जानेसे, हमें क्या वास्ता? हमें जो विधाताने वाणीका वरदान दिया है, उसे हम यूँ सहज ही व्यर्थ नहीं होने देंगे।"

उपस्थित शृगाल-समूहने नतमस्तक होकर उपाय पूछा तो उसने कहा—

"अब हम इतने जोरसे चिल्लायेंगे कि जंगल तो जंगल गाँवों और शहरोंके लोग भी सुननेको मजबूर होंगे। हम भूखों मरना पसन्द करेंगे, लेकिन बोलनेका अधिकार नहीं छोड़ेंगे।"

११ सितम्बर १९५६ ई०

# म्युनिसिपल उम्मेद्वार

हमारे पड़ोसमें म्युनिसिपल कमेटीके लिए एक उम्मेदवार क्या खड़े हुए हैं कि खाना-पीना, उठना-बैठना सब हराम कर दिया है। जब देखो तब वही राग, इसके सिवाय उन्हें और कोई कार्य नहीं है। काफ़ी रोज़ तो इनके चकमोंसे जान छुड़ाता रहा, आखिर एक रोज़ धर ही लिया गया। लाचार मुँह लटकाये साथ हो लिया। कितनी ही गलियाँ-रूपी वैतरिणी पार करके छज्जू खटिकके पास पहुँचे। बिचारे छज्जू खटिक खटोलेपर बैठे हुए गुड़गुड़ी पी रहे थे; हमारे उम्मीदवार साहब, "काका राम राम" कहके उसी टूटे खटोलेपर पँगायतकी तरफ़ बैठ गये और अपने राम बैठनेकी जगह न होनेसे ठुंठकी तरह खड़े ही रहे। छज्जू समझा कि लौण्डेको चेचकका टीका लगानेवाले आये हैं, इसलिए बोला—मुंशीजी वा दिन तो चवन्नी दी ही थी, आज फेर आन बैठे।

उम्मेदवार साहब बोले—काका! मुन्शी नहीं, मैं हूँ आपका ग़ुलाम।

इतना सुनते ही छज्जू खटिक अपनी ऐनकको नाकके सिरेपर सरकाकर और एक हाथको माथेके आगे छज्जेकी भाँति लगाकर बोला—कौन... मैं तुम्हें पहचान नाँय सको।

उम्मेदवार साहब बड़ी दीनतापूर्वक बोले—काका! मुद्दतोंमें आया हूँ, इसीलिए नहीं पहचान सके। मेरे पिताजी तो आपके लँगोटिया यार थे, मैं फ़र्जूमलका बेटा हूँ।

छज्जू—कौन फ़ज्जूमल पच्चूनिया, जो हमारे मोहल्लेमें हद्द-मिच्च बेचवे आवे करे हो?

उम्मेदवार साहब खिसयानपटको सम्भालते हुए बोले—हाँ काका,

वही, तुम्हारे तो लँगोटिया यार थे, उन्हें कुछ भी कहो, पर मेरी लाज तो अब तुम्हारे ही हाथ है।

उम्मेदवार साहब जब अपना परिचय और तशरीफ़ लानेका सबब बता चुके तो छज्जू खटिक जरा माथेपर बल डालकर बोले:—अपनी गज्जको कोई चाचा, कोई ताऊ, कोई भिनोई, कोई फूफा बना तो चलो आवे है; मतबल निकर जाने पर कोई ससुरो नाँय फटके। मनसपलट्टीने घर-घरमें नल लगवाय दिये, पर हमारे मोहल्लेमें पोखर तक नाँय बनवाई और पखानो यहाँ बनवाय दियो, जामे देशकी दुनिया धूर खाइवेको आवे है। आग लगे ऐसी मनसपलट्टीमें और कूआनमें गिरे लिम्बर।

उम्मेदवार साहब थूकको सटकते हुए बोले:—काका! जभी तो कहता हूँ कि वहाँ क़ाबिल और अपने आदमी भेजने चाहिएँ। अगर आपने मुझे भेजा तो आपके मुहल्लेमे घर-घरमें नल लगवा दूँगा, इस पाखानेकी जगह मन्दिर बनवा दूँगा।

छज्जू बोले—भैया इस चबर-चबरको तो रहने दे, जैसे भूतनाथ वैसे परेतनाथ, जो भी आवे है, बावन गजको बनके आवे है, पर हम सब जाने हे, नौनकी खानमें जो भी गिरेगो नौन हो जायगो, दुनिया मतबलकी है। २०० घर हमारी जातके हैं, पाँच रुपैया फी वोटर जो मोय देगो वाईको हम लिम्बरीकी वोटर देंगे।

उम्मेदवार साहब शर्त मंजूर करके वहाँसे खिसके तो मुझसे बोले—देखा, सालेकी बातें, क्या आसमानसे बातें कर रहा था। मोरीकी ईंट चौबारेपर रख दी तो देवी ही बन गई। कहते हैं नीचोंको ज्यादा मुँह नहीं लगाना चाहिए, यह पाजी सब जूतेके यार हैं।

मैं बात काटकर बोला—आपने नाहक़ इतनी खुशामद की, यह नुस्खा तो बहुत आसान है, चलिये आज़माकर देखें।

वह मेरा कन्धा पकड़कर बोले:—भाई, अब वह हवा गई; अब तो इनसे मिन्नत-खुशामदोंसे ही काम लेना होगा। क्या करें मतलबके लिए गधेको भी बाप बनाना पड़ता है। मैंने भी अपने मतलबको कैसा चकमा दिया?

उम्मेदवार साहबकी उक्त युक्ति सुनकर तो मैं भी सोचमें पड़ गया। क्या मुझे भी गधा समझकर यह चकमा देनेके लिए मीठी-मीठी बातें करता है? फिर भी मैं अपने मनोभाव छिपाते हुए बोला—चकमा आपने नहीं, उसने दिया, रुपया आपसे पहले लेलेंगे, फिर राय वहाँ जाकर आपको न भी दें तो आप उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते?

वह बोले—भाई न देता तब भी मुश्किल थी। यह फिर जलकर उधरकी राय देते। अब कुछ उम्मीद तो है। दो-सौ चार-सौके लिए क्यों इन ज़लीलोंको रुठाया जाय, कामयाब होजाऊँ तो सब बता दूँगा।

बात करते-करते तेलियोंके मोहल्लेमें निकल गये। वहाँ ननुआ तेली अपने घरके बाहर पत्थरपर बैठकर साबुन मलकर नहा रहा था। हमारे साथी ज़रा दाँत निपोरकर बोले—क्यों साहब, क्या हो रहा है?

ननुआ तेली दोनों हाथोंसे मुँह पर साबुन मलता हुआ फुर-फुर करता हुआ बोला:—अजीब आदमी हो, दिखलाई नहीं देता कि क्या कररिया हूँ? छिंट्टा पड़ जाँयगी तो कहोगे नमाज़ी कपड़े नापाक़ हो गये।

मेरे सामने ही ऐसी खरी-खोटी सुननी पड़ेंगी, उम्मेदवार साहबको यह उम्मीद न थी। फिर भी झेंप उतारनेकी ग़रज़से बोले—हो यार पूरे चखिया, आँखोंमें साबुन मले जानेसे देख नहीं सकते तो आवाज़ तो पहचान लेते। मैं हूँ कल्यानसिंह।

ननुआ तेली जल्दी-जल्दी आँखोंमें पानीके दो चार छपके मारकर बोला—कौन कलुआ जो मेम्बरी को खड़ा होरिया है।

"जी हाँ, मैं ही वह आपका सेवक हूँ।"

ननुआ तेली अपनी धोतीको पछाड़ते हुए बोला—तो आप हमारे पास किस लिए हरियान हुए हो ? हमारे यहाँसे तो खुद छीतर पनवाड़ी खड़ा हुआ है।

उम्मीदवार साहब ज़रा आँखें नचाते हुए बोले:—वाह, लाला ! अच्छे तेली तम्बोलीको खड़ा किया।

घबराहट और मुहावरेके कारण उम्मेदवार साहबके मुँहसे तेली-तम्बोली निकल तो गया, पर बड़े सटपटाये। ननुआ तेली फौरन् आँखें तरेरकर बोला:—भाई साहब ! वहाँ तेली-तम्बोली तो जा सकते हैं पर, चरकटों और घसखुदोंका लम्बर आना ज़रा मुश्किल है।

उम्मेदवार साहब बोले:—रायसाहब ! तम्बोलीके साथमें महावरन आपकी जातीका नाम निकल गया। वरना मैं तो खुद इस बातका क़ायल हूँ कि जो भी क़ाबिल हो, वही चुना जाय; ख्वाह वह किसी भी क़ौमका क्यों न हो ?

ननुआ तेली धोती निचोड़ चुके थे, क्रोधको दबाते हुए बोले:—अच्छा फिर कभी तसरीफ़ लाना अब तो मुझे खाना खाना है।

उम्मेदवार साहब अपना-सा मुँह लेकर आगे बढ़ते हुए मुझसे बोले:—देखा बेटा ! कैसी-कैसी कड़वी घूँट पीनी पड़ती है। दो-दो कौड़ीके आदमियोंकी क्योंकर झिड़कियाँ खानी पड़ती हैं। यह हम ही हैं, ऐसा-वैसा यहाँ फटक तो जाय !

मैं बोला:—बेशक यह आपका ही कलेजा है, जो ऐसी जली-कटी सुन लेते हैं। मेरे जैसा तो थूकने भी यहाँ न आवे।

वह बोले:—बेटा ! अभी निमूछिये हो। देखा ही क्या है, जुम्मा-जुम्मा आठ रोजके ब-मुश्किल होंगे। गरम खून है, फ़ौरन् उबाल आजाता है। यहाँ बूढ़े होनेको आये, तेज़ी बर्तें तो कैसे काम चले ? यह भी शतरंजी चालें हैं; गरम लोहा ठण्डे लोहेसे ही कटता है।

आगे बढ़े ही थे कि एक इक नेत्रहीन पण्डित जी मिल गये। मैंने समझा कि असगुन समझकर शायद यह अब घर लौट लेंगे, किन्तु वह तो पण्डितजी को देखते ही रेशाखत्मी हो गये। बोले:—गुरु! कहाँको? मैं तो तुम्हारे ही पास जा रहा था।

पण्डितजी तो निकले ही शिकारकी तलाशमें थे। एक बटेर अनायास फँसते देख बाँछें खिल गईं। उम्मेदवार साहब एक रुपया पण्डितजीके हाथमें देकर बोले:—महाराज! ऐसा कोई अनुष्ठान करो कि मुखालफ़ीन (प्रतिपक्षी) सब मुँहकी खायें और तुम्हारे चेलेका ही बोलबाला हो।

पण्डितजीके तो मुँह खून लगा हुआ था। एक रुपयेसे क्या खाक राज़ी होते? अतः उसको अण्टीमें लगाते हुए बोले:—मैंने तो तुम्हारे बिना कहे ही जन्मपत्र अवलोकन किया था; किञ्चित् शनिदेव क्रुद्ध हैं। जो है, सो वह कछ उपाय करनेसे शान्त हो जायँगे। भाग्याकाश आपके अनुकूल करनेमें हमें ठाकुरजीके अनुग्रहसे कुछ देर नहीं लगती। केवल १२ लाख गायत्रीके मन्त्रोंका पाठ करना है, यह कार्य १२ ब्राह्मण एक मास पर्यन्त कर सकेंगे, इसका एक रुपया दिवसके हिसाबसे ३६० रु० और दो सौ रुपये सामग्रीमें और ५० ब्राह्मणोंको भोजन करानेमें अनुमान १०० रुपया आपका व्यय होगा। मेरी चिन्ता न कीजिये, सफलता होने पर मुँह मीठा कर लूँगा।

पण्डितजीसे ब-मुश्किल जान छुड़ाकर आगे बढ़े तो एक मैट्रिकुलेशन फ़ेल बाबूजी मिले; जो अगले वर्ष क़हतकी वजहसे चमारसे ईसाई हो गये थे, और अब वह शायद किसी खैराती होस्पिटलमें कम्पाउण्डर थे। अंग्रेजी ढंगसे दुआ-सलाम होने पर बाबूजी पतलूनकी जेबमें हाथ डाल कर बोले— हम नहीं पहिचाने सकटा टुम कौन है?

उम्मेदवार साहब सुनकर कुढ़ गये; फिर भी शान्त स्वरसे बोले!

हाँ, साहब ! अब आप क्यों पहचानने लगे ? बड़े आदमी होने पर छोटी चीज़ दिखाई ही नहीं देती। इसमें आपका क्या क़ुसूर है।

बाबू साहब सिगरेटका धुआँ उड़ाते हुए और भी अकड़कर बोले—'टुम किस माफिक बोलेना मांगटा है ? मालूम होटा है टुम किसी मरीजका सिफारस लेकर आने सका है।'

उम्मीदवार साहब सकपकाकर बोले—मैं मरीज़के लिए नहीं, खुद अपनी सिफ़ारिश लेकर जनाबकी ख़िदमतमें हाज़िर हुआ हूँ। मैं म्युनिसिपल कमेटीकी मेम्बरीके लिए खड़ा हुआ हूँ। मुझे अफ़सोस है कि आप जैसे ज़हीन और तजुर्बेकार अभी कम्पाउण्डर ही बने हुए हैं। काश मेरा बस चलता तो डाक्टर कभीके बन गये होते।

उम्मीदवार साहबका निशाना ठीक बैठा। उक्त किरंटीनसाहब कमेटीके होस्पिटलमें तो थे ही, फूलकर कुप्पा होगये। खुशीमें आँख नचाकर बोले—"अरे साहब ! अब क़ाबिलियत और तजुर्बेको कौन देखता है, सार्टीफिकेटको देखते हैं, चाहे इल्मियत खाक भी न हो। आप जैसे क़द्रदाँ वहाँ जायें, तब हैवानोंकी जगह इन्सानोंकी पूछ हो। आप इत्मीनान रखिये, तन-मनसे आपकी कोशिश करूँगा।"

मैं हैरान था कि यह किरंटीन इतनी जल्दी हिन्दी कैसे बोलने लगा ? आग तो कोयल-वाणी बोलते कभी देखे न सुने। आगे चले तो एक खद्दर-धारी सज्जन मिले। मालूम हुआ कि सन् ३०में गांधीकी आँधीकी लपेटमें तीन महीनेकी काट आये थे, और जुलूसमें घुसकर तमाशा देखनेके उपलक्षमें, पीठमें पुलिसकी गोली भी खा चुके थे। गालोंमें झुर्रियाँ पड़ जानेके कारण युवावस्थामें ही बुजुर्गीका प्रभाव टपका पड़ता था और आँखें अन्दर धँसी होनेके कारण दार्शनिक भी प्रतीत होते थे। अतः मैं भी 'वन्देमातरम्' कहकर उनके समीप बैठ गया।

बातचीतका सिलसिला जमाते हुए उम्मेदवार साहब बोले:—महाशयजी आप क्यों नहीं खड़े होते ? इस तरह उदासीन रहनेसे क्योंकर काम चलेगा ? टोडियोंका तो वहाँ तक पहुँचना बहुत ही खतरनाक साबित होगा।

महाशयजी अपने चश्मेको धोतीसे पोंछते हुए बोले:—भला मैं वहाँ क्योंकर जा सकता हूँ! देशके झगड़ोंसे ही अवकाश नहीं मिलता; फिर वहाँ जाना कैसा ?

मैं बोला:—महाशयजी आजकल तो देशमें कोई काम हो नहीं रहा है। कांग्रेसने तो रचनात्मक प्रोग्राम स्थगित कर रक्खा है। फिर आपको क्या ऐतराज है ?

महाशयजी ज़रा अभिमानसूचक स्वरमें बोले:—काँग्रेसका काम लाख बन्द हो, परन्तु जिनके आँखें हैं, वह जानते हैं कि करनेवाले करते ही हैं। ऐसे-वैसे काम बताये थोड़े ही जाते हैं। हम तो बलबटेर (वोलिण्टियर) हैं; चाहे पकेटिंग (पिकेटिंग) करालो, चाहे किन्कलाब (इन्कलाब) के नारे लगवालो, और चाहे बिलोटिंग (कांग्रेसबुलेटिन) बिकवालो, सबके लिए तैयार रहते हैं।

कहीं सचमुचमें ये उम्मेदवारीमें नाम न लिखादें इस डरसे उम्मेदवार साहब ज़रा थपकते हुए बोले—बेशक महाशयजी, सच्चा काँग्रेसी अगर कोई देखा तो आपको देखा। दुनिया इधरसे-उधर होगई मगर आप टस-से-मस न हुए। पर यूँ टालनेसे काम नहीं चलेगा, या तो आप किसीको अपना करलें, या किसीके हो रहें। या तो आप खड़े हों, मगर अपने चान्स देख लीजिए, अन्यथा मेरी मदद कीजिए। विरोधी हमारे इलाक़ेसे कामयाब हो जाय, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। देखिये आपके सेवकके शरीरपर तो क्या, घरभरमें विलायतीका एक तार नहीं पा सकता। मेरे घरसे बीमार

रहनेपर भी रोज चर्खा चलाती है। सत्याग्रहके दिनोंमें मैंने खुद गांधी-नमक खरीदा था, ताकि कोई गिरफ़्तार करे, मगर हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? काँग्रेसका ऐसा शायद ही कोई जल्सा होता होगा, जिसमें मैं न जाता हूँ। भई, दिखावट और ढोल पीटना तो हमें आता नहीं, चुपचाप न जाने क्या-क्या कर दिया। कई रोज तो पुलिस इन्सपैक्टर रात भर मकानके आस-पास घूमता रहा। तुम्हें तो सब मालूम ही है।

महाशयजी उम्मेदवार साहबसे एकआध रुपया लेकर नीचा देख चुके थे, अतः हाँमें-हाँ मिलाते रहे, और अन्तमें बोले—आप विश्वास रखिये! जी जानसे आपके लिए प्रयत्न करूँगा।

महाशयजीको बातोंके तिलिस्ममें फाँसकर और नये शिकारकी तलाशमें चले कि ट्राममें जाते हुए एक आबनूस चेचक मुँह दाग़ कुल्लेदार साफ़ा पहने हुए व्यक्तिको जो देखा तो उम्मीदवार साहबने पुकारा:—क्यों साहब! क्या यूँ ही अलगकी अलग निकल जाओगे।

क़ुल्लेधारी सज्जन ट्रामसे उतरते हुए बोले:—भाई यूँ ही क्यों निकल जाएँगे कोई हम अहसान फ़रामोश थोड़े ही हैं?

मुझे देखकर जरा झिझके, मगर उम्मेदवार साहबके यह कहनेपर कि यह तो अपने घरका ही आदमी है वह सज्जन बोले—'भाई यह तुम्हारा ही दम था जो यहाँ गांधी-गिरोह मिट गया। और हम यहाँ बा-इज्ज़त रहते रहे। वरना समुद्रमें रहकर मगरसे वैर कैसा? तुम उस आड़े वक़्त काममें आये तो हम आज हवलदारसे सब-इन्सपैक्टर बने हुए हैं। बड़ा साहब तो मुझसे इतना खुश है कि अगर मैं मैट्रिक पास भी होता तो मुझे निश्ची छोटे-मोटे जिलेका कोतवाल बना देता। बाल-बच्चे पल रहे हैं, भैया तुम्हारे बाल-बच्चोंकी रोज ख़ैर माँगते हैं। आधी रातको कहो तो तुम्हारे लिए मैं अपनी जान छिड़क दूँ।'

उम्मेदवार साहब आत्म-प्रशंसा सुनकर फूले न समाये। फिर भी तहज़ीबके लिहाज़से बोले—अजी, मैं किस क़ाबिल हूँ, यह आपका हुस्नेज़न है जो इज्ज़त-अफ़ज़ाई कर रहे हैं। मुझे तो सन्तोष तब होगा जब आप कोई षड्यंत्र पकड़ सकेंगे।'

थानेदार साहब बात काटकर बोले:—आपका दम ग़नीमत चाहिए। सब हो जायेगा। अब तो आप ताबेदारको कोई हुक्म फ़रमाइये।

उम्मेदवार:—अजी हुक्म क्या? बस यही अर्ज़ है कि मुहल्लेके ये दो-चार गुण्डे जो ऊधम मचा रहे हैं, इन्हें ज़रा सीधा कर दीजिए और इस इलाक़ेकी ज़रा नीच ज़ातको भी क़ाबूमें ले आइये, कमबख़्त सीधे मुँह बात भी नहीं करते।

थानेदार:—आप इत्मीनान रखिये इन बदमाशोंको तो मैं दफ़ा १०९ (बेकारी) में गिरफ़्तार किये लेता हूँ और नीचोंके यहाँ चोरी या औरत भगाये जानेके शुबहेमें तलाशी लिये लेता हूँ। साले सब ठण्डे हो जायेंगे।

सुबहसे निकले हुए रात हो गई थी। मारे भूखके पेटमें चूहे कबड्डी खेलने लगे थे। ब-मुश्किल जान छुड़ाकर घर आया तो उम्मेदवारोंकी इस गिरगट पॉलिसी पर सोचने लगा। हे प्रभो! ऐसे ही मायाचारी सेवाका दम भरकर वहाँ जाते हैं। मैं सोच ही रहा था कि वोट किसको दूँ कि आई हुई वोटरोंकी पर्चीसे मेरे देखते-देखते श्रीमतीजीने लड़केकी छी-छी पोंछकर फेंक दी।

**जनवरी १९३४ ई०**

# अहिंसा और कायरता

अहिंसा और कायरतामें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। अहिंसा धर्म है, कायरता पाप है। अहिंसा सम्यक्त्व और कायरता मिथ्यात्व है। अहिंसा और कायरतामें उतना ही अन्तर है जितना कि पूर्व और पश्चिममें। भव्य और अभव्यमें, प्रेम और मोहमें। अहिंसा विश्वका शृंगार है, कायरता कोढ़ है।

अहिंसा और कायरता इतनी विरोधी स्वभावकी होने पर भी दोनों जुड़वाँ बहनें हैं। अन्तरंगमें एकके अमृत और दूसरीके हलाहल भरा हुआ है, पर ऊपरी वेश-भूषा, और रंग-रूपमें तनिक भी अन्तर नहीं है। हम क्या, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, धीमान्-बलवान इस रूप-साम्यके कारण धोखेमें फँसते रहे हैं।

सीता-हरणके समय इसी कायरताने सीताको मौन-सत्याग्रहकी सीख दी। जब सीताके कानमें अहिंसाने कहा कि "अन्यायको चुपचाप सहन कर लेना अन्यायको सींचना है। अन्यायीको समाप्त कर देनेसे धार्मिकोंकी रक्षा होती है, धर्मकी वृद्धि होती है।" तभी कायरताने सीताको मंत्र दिया—"रावणके नाशका विचार मनमें लाना भी पाप है, आत्मा अमर है, अमूर्त है, न इसे कोई मार सकता है, न अपवित्र कर सकता है। शरीर जन्मतः अशुचि है, नाशवान है। जिसके हाथसे भी इसका नाश होना भाग्यमें लिखा है होकर रहेगा। कर्मोंकी इस अमिट रेखाको कोई मिटा नहीं सकता। फिर इतना रोष क्यों? रोष तो आत्माका घातक है। आत्माका जब कोई घात नहीं कर सकता, तब उसका शत्रु भी कोई नहीं। संसारमें आकर शत्रु-मित्र, अपने, परायेकी धारणा बना लेना संसार-भ्रमणको बढ़ाना है।

अतः तू शुद्ध हृदयसे इसे क्षमा कर। इसके अपकारका भाव भी मनमें लाना पाप है।"

कायरताके बहकावेमें भोली सीता आ गई। उसे क्या मालूम कि ये राक्षसी केवल अहिंसाका स्वर और रूप लिये घूमती है, अन्तरंग तो हलाहलसे ओत-प्रोत है। व्याघ्रसे सावधान रहा जा सकता है, किन्तु गो-मुखी व्याघ्रसे कब तक बचा जा सकता है, कभी-न-कभी उसके फंदेमें फँसना सम्भावनासे खाली नहीं।

राक्षसी कायरताने सीताको जब पूरी तरह सम्मोहित कर लिया तो अहिंसा निरुपाय होकर भागी हुई जटायुके पास पहुँची और कानमें चुपके-से बोली—"जटायु! तेरे नेत्रोंके सामने एक अबलाका हरण हो रहा है, और तू निश्चेष्ट बैठा हुआ है। शीघ्रता कर, पूरे वेगसे रावणपर झपट्टा मार, नहीं तो वह अबलाको ले जायगा। संसारमें पुरुषत्वको कलंक लग जायगा, धर्मकी मान-मर्यादा नष्ट हो जायगी।"

जटायु बोला—"माँ, अच्छा हुआ तुम उपयुक्त अवसर पर आ गई। मैं धर्म-अधर्म, कर्तव्य और अकर्तव्यके जालमें फँसकर कर्तव्यविमूढ़-सा हो रहा था। मन आततायी पर टूट पड़नेको होता था, परन्तु समझ कह रही थी—मूर्ख! जिस पर अन्याय हो रहा है, वह स्वयं शान्त और क्षमाशील है, तब तू क्यों मक्खी-सी जान लेकर हाथीसे लड़नेको सोच रहा है।"

अहिंसा बोली—"जटायु! अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए बलाबलका विचार छोड़कर आदर्शकी ओर दृष्टि रखनी चाहिए। संसार अनन्त बार उजड़कर फिर हरा-भरा हो जायगा, किन्तु आदर्श मिटा तो वह फिर जीवित नहीं किया जा सकेगा। आज तुम सीताका हरण देखते रहे तो भविष्यमें फिर कोई पुरुष अबलाओंकी रक्षाको नहीं उठेगा और बिचारी अबलाएँ चुपचाप आँसू बहाती हुई आततायियोंके साथ जानेको बाध्य हुआ



करेंगी। जटायु! वह देख रावण चला, शरीरमें एक रक्तकी बूँद रहने तक अन्यायका प्रतिशोध ले। तू निश्चय ही इस धर्म-कार्यमें मरेगा, पर मैं तुझे अमर कर दूँगी। भावी सन्तान अपने रक्तसे तेरा अभिषेक किया करेगी।"

जब दुर्योधन द्वारा द्रौपदीका चीर-हरण होने लगा तो इस मायावी कायरताने पाँचों पाण्डवों, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य वग़ैरहको कुछ ऐसी पट्टी पढ़ाई कि अन्यायको निर्विकार नेत्रोंसे देखते रहना ही सचमुच उन्होंने धर्म समझ लिया। रोती बिलखती द्रौपदीके पास भी यह कुलटा सान्त्वना देनेके बहाने पहुँची और बोली—"पाञ्चाली! व्यर्थमें क्यों संक्लेशित परिणाम करके कर्मोंका बन्ध करती है। तेरी आत्मा शरीरसे भिन्न है। आत्मा एक दिवस परमात्मा बनकर रहेगी। यह पुद्गल ही उसके विकासमें बाधक हो रहा है। तू इसका मोह छोड़। यह शरीरका मोह ही संसारके भ्रमणका कारण है। इस मोहके नाशका इससे उपयुक्त अवसर और क्या मिलेगा? तू निश्चल भावसे खड़ी हो जा। कामुक दुर्योधन **'नव द्वार-बहें घिनकारी'** शरीरको देखना चाहता है तो देखने दे। जब तेरा निश्चय नयसे शरीर है ही नहीं, तब दुर्योधनका विरोध करके उसके हृदयको दुखाना महापाप है।"

द्रौपदीने सती-तेजसे चाण्डालीकी ओर देखा तो फिर इसे बोलनेका साहस न हुआ। उधर अहिंसाने सती नारियोंसे द्रौपदीपर आनेवाली विपदा बतलाई तो सब ओठ काटकर कौरवोंका नाश करनेको प्रस्तुत हो गईं, किन्तु अहिंसाकी यह विवशता दिखाने पर 'यदि द्रौपदीकी रक्षाको नारी-जाति सन्नद्ध हो उठेगी तो पाण्डवोंको फिर संसारमें मुँह दिखानेको जगह नहीं रहेगी। भीष्मका जीवन भरका तप नष्ट हो जायगा। द्रोणाचार्यके वीरत्वमें कालिख लग जायगी। पुरुषत्वका पानी नालीमें बह जायगा।

नारियाँ भविष्यमें पुत्र जननेको पाप समझने लगेंगी।' बमुश्किल शान्त हुई और बा-आवाज़ बुलन्द कहा—"संसारके नराधमो! कान खोलकर सुन लो, जब तक नारीमें सती तेज बाक़ी है, उसकी धारको कोई छू नहीं सकता। हम सबके वस्त्र द्रौपदीके लग जायेंगे, कामुक उसके शरीरका एक रोम भी नहीं देख सकेगा। जो दुर्योधन आज रक्तस्राव होती हुई द्रौपदीको देखना चाहता है। हमारी बहन 'गदा' एक रोज़ उसका रक्त बहाकर अवश्य दिखायेगी।"

द्रौपदीको विराटके दरबारमें कीचकने लात मारी तो वहाँ भी न जाने यह मायावी कायरता आँख मारकर क्या समझा गई कि द्रौपदी बिलखती रही, सिसकती रही और दरबारके सारे योद्धा जीवन्मुक्त-से बने बैठे रहे। यह भीमको वहाँ न पाकर उसे पट्टी पढ़ानेको खोजने निकली तो वहाँ अहिंसा पहिले ही भीमको कर्तव्यका बोध करा चुकी थी, कायरता सिर पीटकर रह गई और कीचककी लाश पर ख़ूब दुहत्तड़ मारकर रोई।

महाभारत-युद्धसे पूर्व कृष्णको भी झाँसा देनेसे यह बहुरूपिणी बाज न आई। उसे कौरवोंसे सन्धि करनेके बहाने उनकी चापलूसी करनेको विवश कर दिया। कायरताका यह अमोघ अस्त्र कृष्णपर भी चलते देख अहिंसाको रुलाई आ गई। वह आँखोंमें आँसू भरे, बाल खोले द्रौपदीके रूपमें कृष्णके मार्गमें नतमस्तक खड़ी हो गई। कृष्ण सब कुछ समझ गये। सांकेतिक भाषामें बोले—"बहन! मुझसे ऐसा कार्य कभी न होगा, जिससे धर्म-मर्यादा नष्ट हो जाय, अन्यायियोंको प्रश्रय मिले और धार्मिक आपदाओंमें पड़ें।" कृष्णके वचन सुनकर अहिंसाके नेत्रोंसे आँसू झर-झर बहने लगे। उनमें कृष्णने पढ़ा—"भाई! इस अर्जुनको सम्भाले रखना, ऐसा न हो कि यह ऐन मौक़े पर उसके झाँसेमें आ जाये।" कृष्णने आश्वासन देकर प्रस्थान किया।

भगवान् महावीरके शासन-कालमें कायरता सूखकर काँटा हो गई थी। पर संसारमें मूर्खोंकी कमी नहीं, बुद्धिमानोंकी कमी है। भगवती अहिंसा समझकर इसको नन्दने प्रश्रय दे दिया। सिकन्दर भारत-वासियोंको रौंदता रहा, पर वह मूर्ख उस दुष्टाके रूप-रंग पर ही मुग्ध हुआ बैठा रहा। तब लाचार अहिंसा चाणक्य और चन्द्रगुप्तके पास दौड़ी आई। अहिंसा-की बात सुनी तो वे भौंचक-से रह गये। "न जन-बल, न बुद्धि-बल, न शस्त्र-बल, मार्गके भिखारियोंको यूनानी और नन्द-साम्राज्यको मूलोच्छेद करनेका आदेश! भगवती अहिंसा, बोलो ना, हम किस प्रकार अपनी भक्तिकी परीक्षा दें।"

अहिंसाने सन्तोषकी श्वास लेकर कहा—"वत्स! मनुष्यमें धैर्य और संकल्प हो तो वह सब कुछ कर सकता है। रावणके नाशका संकल्प करते समय रामके पास क्या था? महावीर गुरुडमवादका मूलोच्छेद करने निकले तो उनके पास क्या था? दुनिया झुकती है कोई झुकाने वाला चाहिए।"

प्रखर बुद्धि चाणक्य और चन्द्रगुप्तको यह संकेत पर्याप्त था।

इसी कायरताने मौर्य-साम्राज्यको नष्ट कराया और इसी मायावीने पृथ्वीराजकी बुद्धि नष्ट कर दी। मुहम्मद गोरी ५०० गायोंको आगे करके अपनी सेनाको लेकर भारतको रौंद रहा था और पृथ्वीराज गौ-हत्याके भयसे आक्रमणकारियोंको रोकनेका प्रयास नहीं कर रहा था, उसे भी अहिंसा-ने हर चन्द समझाया:—

"पृथ्वीराज! सारे भारतकी आँखें तुझ पर लगी हुई हैं। उठ, और इन मायावी गायोंको मार। इनके बचानेका अर्थ है निरन्तर करोड़ों गायोंका घात, धर्म-स्थानोंका विनाश, सतीत्व-हरण और लक्ष्मीका प्रस्थान। तेरी इस अकर्मण्यता और नक़ली दयाके कारण भारत सदैवको गर्तमें गिर

जायगा। परतंत्र भारतीय तेरे इस दुष्कर्मके कारण सदैव आँसू बहायेंगे।"

अहिंसा लाख-लाख गिड़गिड़ाई मगर पृथ्वीराजपर खाक असर न हुआ। जो अपने ९ विवाहोंके लिए लाखों नर-हत्याएँ कर चुका था, वही ५०० गायोंके लिए साक्षात् धर्म-मूरत बनकर बैठ गया।

जो अपने देश, कुल, मान-मर्यादाका विनाश चाहते हैं, वे भले ही इस लुभावनीके फेरमें पड़े रहें, परन्तु जो मानवताकी रक्षा चाहते हैं, वे भगवती अहिंसाका शुद्ध रूप समझें, उसकी समयकी पुकारको पहचानें।

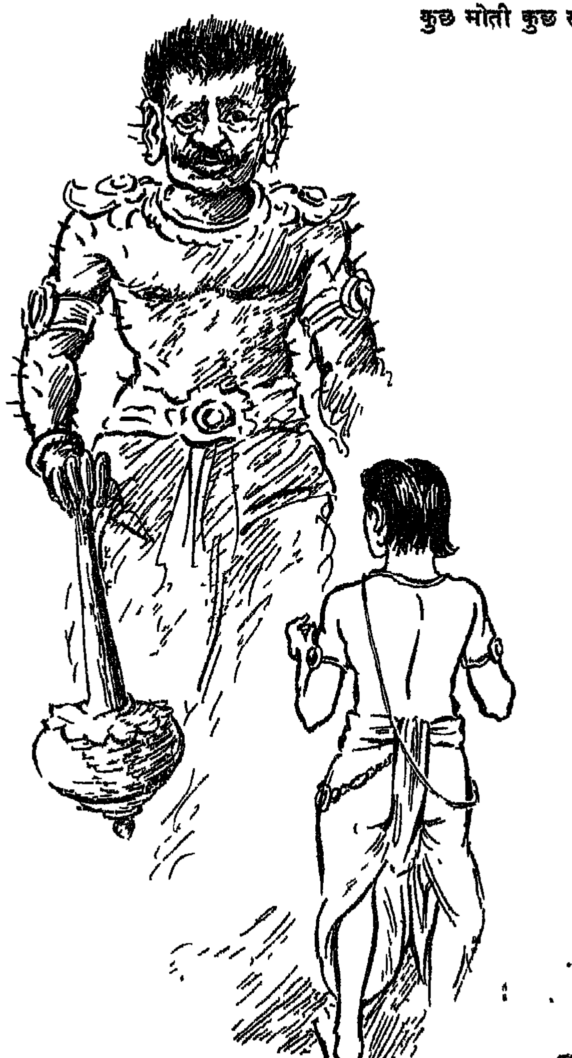
**जनवरी १९४७ ई०**

# कायरताका जनक

भय कायरताका जनक है। उपनिषदोंमें एक कथा आती है—'एकबार नचिकेता अमर होनेका उपाय स्वयं यमराजसे पूछने गया।' नचिकेताका यह अभूतपूर्व साहस देखकर यमराज सहम-सा गया। उसे नचिकेतापर हाथ डालनेका साहस नहीं हुआ, और उसे विवश होकर बताना पड़ा कि—'भयको जीतनेसे अमरत्व प्राप्त होता है, भयका नाम ही मृत्यु है।'

कथा पढ़ी तो मनको न लगी। भय जीतनेसे मृत्यु क्यों नहीं आयेगी? भय और मृत्यु एक ही पर्यायवाची शब्द कैसे हो सकते हैं? उस समय इस रूपकका अर्थ कुछ भी समझमें नहीं आया? उन्हीं दिनों महाभारतके स्वाध्यायमें प्रसंग आया कि महाभारतमें जूझ मरनेको १८ अक्षौहिणी सेना सजी खड़ी है और भीष्म पितामह कौरवोंको बतला रहे हैं कि दोनों पक्षोंमें कौन-कौन योद्धा महारथी और कौन-कौन रथी हैं। उन्होंने अर्जुन, भीम, दुर्योधन, द्रोण, कर्ण आदिको महारथी और द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको रथी कहा, तो लोगोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वे विनीत भावसे बोले—"पितामह! हम तो अश्वत्थामाको आपके बताये इन महारथियोंसे भी अधिक पराक्रमी और रण-कौशल पारंगत समझते हैं और आप उन्हें महारथी भी नहीं समझते।"

पितामहने सहज स्वभाव उत्तर दिया—"केवल बल और रण-कौशल ही महारथी होनेके लिए पर्याप्त नहीं। जो गुण मनुष्यको अजेय बना देता है, वह गुण यदि सैनिकमें न हो तो वह जीती बाजी भी हार जाता है और मुझे कहते हुए दुःख होता है कि अश्वत्थामामें वह गुण नहीं है। वह भयको जीतकर निर्भीक नहीं हो पाया है।"



पितामहकी उक्त भविष्यवाणी आगे चलकर सोलहों आने सत्य सिद्ध हुई। जब कौरव-पक्षके समस्त महारथी काम आ गये, केवल अश्वत्थामा पर विजयकी आशा केन्द्रित हो गई। और जब रण-कौशल दिखलाकर कीर्तिवरणका उपयुक्त अवसर आया, ठीक उसी अग्नि-परीक्षाके समय अश्वत्थामा रण-क्षेत्रसे भाग निकला। इसी एक भगोड़ेने कौरवोंकी ११ अक्षौहिणी सेनाके बलिदानको धूलमें मिला दिया।

तब आया उपनिषद्की कथाका मर्म समझमें। जो निर्भय होकर जूझ मरता है, वह मरकर भी अमर रहता है और जो भयसे भाग खड़ा होता है, वह जीवित रहते हुए भी मर जाता है।

हिन्दू-धर्मानुसार अश्वत्थामा अमर था। फिर भी वह प्राणोंके मोहसे भाग निकला और कहते हैं आज भी वह अपना कलंकी जीवन लिये छद्म वेशमें जंगलों, पर्वतों और आबादियोंमें घूमता फिरता है, किन्तु एक भी ऐसा मूर्ख आदमी नहीं जो अश्वत्थामा-जैसा अमरत्व एक रोजको भी चाहता हो। अपितु ऐसे जीवनसे वीर-गतिको प्राप्त होनेवाला क्षणभरका जीवन कहीं अधिक श्रेष्ठ समझता है।

भय कायरताका ही नहीं, अनेक पापोंका जनक है। पापी मनुष्य सर्वत्र भयभीत रहता है। भय मिथ्यात्व है, अभय सम्यक्त्व है। सम्यक्त्वी ही परतन्त्रताके बन्धन काटनेका अधिकारी है। मिथ्यात्वी सांसारिक आपदाओंको भुगतनेके लिए लाचार है।

भयके कारण ही मनुष्य संसारमें मिथ्यात्व करता है, बड़े-से-बड़ा अनर्थ करता है। भयभीत मनुष्य संकटके समय स्वजनोंको छोड़कर भाग खड़ा होता है। बहन-बेटियोंकी लाज लुटती हुई निर्विकार नेत्रोंसे देख सकता है। देश और समाजको भट्टीमें झोंक सकता है, केवल अपने प्राण

बचानेके लिए वह संसार पर बड़ी-से-बड़ी विपत्ति लादनेका कारण बन सकता है।

भयके कारण ही यशवन्तसिंह औरंगजेबसे जीती हुई बाजी हार गया। भयके कारण ही १८५७ के विद्रोहका पासा पलट गया। मुग़ल बादशाह बहादुरशाह और सेनापति बने हुए युवराज जनानेमें छिप गये।

अत: हमें सबसे पहले कायरताके इस उद्‌गमको समुद्रके उदरगह्वरमें डाल देना चाहिए। आजसे जो बहुएँ अपने बच्चोंको सिपाही या हव्वाका भय दिखाती दीख पड़ें, उनकी जबान चीमटेसे दाग़ दो। जो पण्डित या उपदेशक चेतनता और जागरणका उपदेश न देकर मनुष्योंको शुष्क निरुपयोगी बातें बताकर अकर्मण्य बनानेका घोर पाप करे, उसको काला मुँह करके जंगली पशुओंके सामने फेंक आओ। बड़ी-बूढ़ियोंको भूत-प्रेतकी कहानियाँ मत सुनाने दो। जो बच्चे किसी स्थानमें जाते हुए भयका बहाना लेकर जानेसे इन्कार करें, उन्हें वहाँ लेजाकर बाँधकर अकेला छोड़ दो, या डंडा देकर उनसे कहो कि जहाँ भय दिखाई दे, वहीं उसको लाठी मारो। जो लड़के हँसी-हँसीमें भयका नाट्य करें, उनके कान गरम कर दो। डरपोक मित्रोंको साहसी न बना सको तो तुरन्त उनका साथ छोड़ दो।

अपने-अपने गाँवोंमें साप्ताहिक ऐसी सभाओंका आयोजन करो, जहाँ एक घण्टा साहसिक कहानियाँ सुनाई जाएँ, जानपर खेलनेवाले जीवटोंके पराक्रमशाली जीवन-चरित्र पढ़कर सुनाये जायें, राजपूतोंकी आन-बान, महिलाओंकी सतीत्व-रक्षा, देशभक्तों के बलिदान और शूर-वीरों, धर्मवीरों, कर्मवीरों, दानवीरोंके कार्योंका ऐसी ओजस्वी और मर्मस्पर्शी भाषामें वर्णन करो कि तुमको कायर समझकर टूट पड़ने वाले आततायियोंको अपने

जीवन का खतरा दिखाई पड़ने लगे। आततायियोंके हाथसे गाय-भेड़ोंकी तरह मरना मनुष्यताका कलंक है। विपत्तिके समय, आततायियोंके आक्रमणके समय क्या करना चाहिए? धर्म-शास्त्रोंमे सब कुछ लिखा हुआ है। मौत जब चौखट पर आ ही खड़ी हो, तब हँसते हुए उसके स्वागत करनेको समाधि-मरण और वीरतापूर्वक भिड़ जानेको वीर-गति कहा है। साथ ही रोते-बिलखते प्राण देनेको रौरव नरकका कारण भी बताया है। भयभीतको उसके सगे संबंधी भी घृणाकी दृष्टिसे देखते हे और निर्भीक वीरकी शत्रु भी सराहना करते है।

जनवरी १९४७ ई०

# मनुष्य और साँप

सुनते हैं डायन भी अपने-परायेका भेद जानती है। वह कितनी ही भूखी क्यों न हो; फिर भी अपने बच्चोंका भक्षण नहीं करती। सिंह-चीते, घड़ियाल-मगरमच्छ, बाज-गरुड़ आदि क्रूर हिंसक जानवर भी सजातीयोंको नहीं खाते। कहते हैं साँपिन एकसौ-एक अण्डे प्रसव करती है और प्रसव करते ही उनमें-से अधिकांश खा लेती है या नष्ट कर देती है। हमारा अपना विश्वास है कि वह क्षुधा-शान्त करनेको सन्तान-भक्षण नहीं करती; अपितु लोक-रक्षाकी भावनासे प्रेरित होकर ही विषैली सन्तानके भक्षणको बाध्य होती है।

क्रूर-से-क्रूर पशु-पक्षी भी अपनी सीमाके अन्दर ही केवल क्षुधा-पूर्तिके लिए विजातीयोंका शिकार करते हैं, किन्तु, हजरते-इन्सानसे कुछ भी बईद नहीं। ये जल-थल-नभ सर्वत्र विश्व-संहारको पहुँचे हैं। आवश्यक-अनावश्यक संसारको कष्ट देते हैं। शत्रुका तो संहार करते ही हैं; मित्रों और परोपकारियोंको भी नहीं छोड़ते। जो काम शैतान करते हुए लजाये उसे ये मुसकराते हुए कर डालते हैं।

संसारमें शायद मछली और मनुष्य ही केवल दो ऐसे विचित्र प्राणी हैं जो सजातीयोंको भी नहीं छोड़ते। सम्भवतः जैनशास्त्रोंमें इसीलिए इन दोनोंके सातवें नरकतकके बन्ध होनेका उल्लेख मिलता है, जबकि अन्य क्रूर-से-क्रूर पशु-पक्षियोंके प्रायः छठे नरक तकका ही बन्ध होता है। ईमानकी बात तो यह है कि मनुष्यकी करतूतोंकी तुलना किसी भी जानवरसे नहीं की जा सकती। यह अपनी यकताँ मिसाल है।

मनुष्य अपने सजातीय यानी मनुष्यका संहार करनेका आदी है। फिर भी भारतके हिन्दुओंके अतिरिक्त प्रायः सभी मनुष्योंने देश, धर्म, समाजकी

रेखाएँ खींच ली हैं। और इन रेखाओंके अन्दर रहनेवाले एक दूसरेका संहार करना तो दूर, अनिष्ट करना भी नहीं सोचते। परन्तु भारतके हिन्दू उच्चवर्णोत्पन्न उक्त मर्यादामें नहीं बँधे हैं। मुक्तिके इच्छुक इस बन्धनसे मुक्त हैं। न इनसे अपने देशवासी बच पाते हैं, न सहधर्मी और न सजातीय।

क्या किसी देशमें, समाजमें अपनी बहन-बेटियोंको, बन्धु-बान्धवोंको शत्रुओंके हाथोंमें सौंपते हुए किसीने देखा है ? न देखा, सुना हो, तो भारतमें आकर यह पैशाचिक लीला अपनी आँखोंके सामने होती देख लो। ये लोग गायका रस्सा तो क़साईसे छीनते हैं, पर, बहन-बेटियोंका हाथ स्वयं उनके हाथोंमें पकड़ा देते हैं। कुत्तों-बिल्लियोंको तो अपने साथ सुलाते और खिलाते हैं, पर अपने सजातीयों-सहधर्मियोंसे घृणा करते हैं। साँपोंको दूध पिलाने और चिउँटियोंको शक्कर खिलानेके लिए तो ये लोग जंगल-जंगल घूमते हैं, पर अपहृत महिलाओंके उद्धारके बजाय उनकी छायासे भी दूर भागते हैं। चिड़ीमारके हाथोंसे तोते-चिड़ियाओंका तो रुपया देकर उद्धार करते हैं, पर आततायियोंके चंगुलमें फँसी, रोती-बिलखती नारियोंको मुक्त करना पाप समझते हैं।

यूँ तो आये दिन इस तरहके काण्ड होते ही रहते हैं, परन्तु सीनेपर हाथ रखकर एक घटना और पढ़ लीजिये—

साम्प्रदायिक उपद्रवोंके परिणामस्वरूप अन्यत्रकी तरह देहरादूनमें भी साम्प्रदायिक संघर्ष हुआ। उसी अवसरपर चार बिधर्मी हाथोंमें तलवार लिये एक ब्राह्मणके घर पहुँचे। और ब्राह्मणसे जाकर बोले कि तुम सकुटुम्ब हमारा मजहब अख्तियार करो और अपनी जवान लड़कीकी हममें-से एकके साथ शादी कर दो, वरना हम सबको जानसे मार डालेंगे।

ब्राह्मण यह दृश्य देखकर घबराया और लड़की देने तथा धर्म-परिवर्तन करनेको प्रस्तुत हो गया, किन्तु जब वह अपनी युवती कन्याका

हाथ उनमेंसे एकके हाथमें देने लगा तो लड़कीने फुर्तीसे उससे तलवार छीन-कर पलक मारते ही दोको खुदागंज भेज दिया; बाक़ी दो भाग गये। वीर लड़कीके साहसके कारण ब्राह्मण और उसका कुटुम्ब तो धर्म-परिवर्तनसे बच गये, लेकिन उस वीरांगनाको खूनके अपराधमें पुलिस पकड़-कर लेगई। भाग्यसे देहरादूनका कलक्टर सहृदय और गुणज्ञ अंग्रेज़ था। उसे जब वास्तविक घटनाका ज्ञान हुआ तो उसने वह मुक़दमा किसी तरह अपनी अदालतमें ले लिया और दो-चार पेशियोंके बाद लड़कीको निरपराध घोषित करके उसको लिवा जानेके लिए उस ब्राह्मणके पास इत्तला भेजी तो ब्राह्मणने कहलवा भेजा कि चार-पाँच रोज़में बिरादरीसे पूछकर बतला सकूँगा कि लड़कीको घरपर वापिस ला सकता हूँ या नहीं। चार-पाँच रोज़के बाद ब्राह्मणने लिख दिया कि—'लड़कीको घरपर वापिस लानेकी बिरादरी इजाजत नहीं देती, इसलिए वह मजबूर है।' इस उत्तरको पढ़कर कलक्टर बहुत हैरान हुआ और ब्राह्मणकी इस निष्ठुरताका कारण उसकी समझमें नहीं आया। लाचार उसने वहाँके आर्य-समाजियोंको वह लड़की सौंपते हुए कहा—"यदि यह लड़की इंगलिस्तानमें उत्पन्न होकर ऐसा वीरतापूर्ण कार्य करती तो अंग्रेज़ इसकी मूर्ति बनवाकर स्मृति-स्वरूप किसी वाटिकामें स्थापित करते और जो स्त्री-पुरुष वहाँसे पास होते उसको आदर देते; किन्तु यह हिन्दुस्तान है, यहाँका हिन्दू पिता अपनी लड़कीको शाबासी देनेके बजाय उसे अपने साथ रखना भी पाप समझता है।"

मालूम होता है कलक्टर साहबको हिन्दुस्तान आये थोड़े ही दिन हुए होंगे। अन्यथा देहरादूनके उस ब्राह्मणकी इस करतूतसे वे व्यथित नहीं हुए होते! उन्हें क्या मालूम कि यहाँ ऐसे ही सन्तान-घातक और समाज-भक्षियोंका प्राबल्य है। ऐसे ही पापियोंके कारण भारतके १४-१५ करोड़

हिन्दू विधर्मी बने हैं। फिर भी इनकी यह लिप्सा अभी शान्त नहीं हुई है और दिन-रात अपने समाज और वंशका घात करनेमें लगे हुए हैं।

"यशोदाने अछूत कुएँसे पानी पी लिया, घनीराम सिपाईके तांगेके नीचे चूहा मर गया, कनौजियोंकी पंगतपर यवनोंकी परछाई पड़ गई। छुट्टू पंडेका तिलक रमजानी भटियारेने चाट लिया, गुड़गाँवेके गूजरोंने मेवोंके हाथ गाय बेच दी, श्रीमाली ब्राह्मण मस्जिदके कुएँपर स्नान कर आये। अतः ये सब विधर्मी होगये हैं। हिन्दूजातिसे बहिष्कृत, हुक्का-पानी, रोटी-बेटी व्यवहार इनके साथ बन्द" और तारीफ़ यह कि वे स्वयं भी अपनेको पतित समझकर आँसू बहाते हुए विधर्मियोंमें मिल जाते हैं। न तो ये सोने-चाँदीसे मढ़े भगवान् ही उनकी रक्षा कर पाते हैं न पतित-पावनी गंगा-यमुना, न भगवान्का गन्धोदक। सब निकम्मे हो जाते हैं और वे गायकी तरह डकराते हुए अपनों-से बिछुड़नेको बाध्य होते हैं।

इन पोंगापन्थियोंके कारण भारतको अनेक दुर्दिन देखने पड़े हैं। भारतपर जब विदेशियोंके आक्रमण होने लगे तो ये तिलक लगाये, हाथमें माला लिये निश्चेष्ट गौ और मन्दिरोंका विध्वंस देखते रहे। सीता-हरणकी कथा पढ़-पढ़कर रोते रहे, परन्तु आँखोंके सामने हज़ारों सीताओंका अपहरण देखते हुए भी इनका रोम न हिला। काश्मीरके ब्राह्मण बलात् मुसल्मान बना लिये गये तो काश्मीर-महाराज काशी आकर गिड़गिड़ाये और इन धर्मके ठेकेदारोंसे उन्हें वापिस धर्ममें ले लेनेकी व्यवस्था चाही, पर ये टस-से-मस न हुए। मूर्तिको पतित-पावन और गणिका तथा सदना क़साईके उद्धारकी कथा कहते-सुनते स्वयं पत्थर बन गये।

**बुत बनके वोह सुना किये बेदादका गिला।**
**सूझा न कुछ जवाब तो पत्थरके होगये॥**

करोड़ों राजपूत मेव, राँघड़, मलकाने विधर्मी बन गये, पर

इन्होंने उनके रोने और घिघयानेपर भी उन्हें गले नहीं लगाया। लाखों महिलाएँ गत वर्ष अपहृत होगई, परन्तु ये वज्रहृदय न तो उनकी रक्षा ही करनेको उद्यत हुए और न अब उन्हें वापिस लेनेको ही तैयार हैं।

जिनके कारण १०-१५ करोड़ हिन्दू विधर्मी हुए, उनके प्रायश्चित्तका असली उपाय यही है कि उनकी सन्तानको काश्मीर और हैदराबादके मोर्चों पर हिन्दू जातिकी रक्षार्थ भेज देना चाहिए। क्योंकि आक्रामक अधिकांश वही लोग हैं जो इनके कारण विधर्मी बने हैं; और जो अब भी इस तरहके अपवित्र मनुष्य हैं, उन्हें भंगियोंका कार्य सौंप देना चाहिए और भंगियोंको कोई दूसरा कार्य; ताकि उनके मिलानेसे भंगी अपना अपमान न समझें। समाजके ऐसे कोढ़ियोंको, जिनसे समाज क्षीण होता हो, चाण्डालोंकी संज्ञा देकर उनसे चाण्डालों-जैसा व्यवहार करना चाहिए।

वाहरे पोंगापन्थियो! सकुटुम्ब धर्म-परिवर्तनको तैयार! लुच्चे-लफंगोंको जवान लड़की देना मंजूर!! न इसमें बिरादरीकी नाक कटती और न जातीय-मर्यादा नष्ट होती, परन्तु आततायियोंको पाठ पढ़ाने-वाली सीतासे भी बढ़कर सुशीला लड़कीको अपनानेमें बिरादरीकी इज्जत गोबर होती!

बेशक ऐसी हिजड़ी समाज उसे कैसे अपनाती और कैसे अपना कलुषित मुँह दिखलाती। ब-कौल किसीके—

परदेकी और कुछ वजह अहले जहाँ नहीं।
दुनियाको मुँह दिखानेके क़ाबिल नहीं रहे॥

### आत्म-घातक नीति

'एक ही रास्ता' शीर्षकमें राष्ट्र-पिता गांधीजीने लिखा था—"मेरी

समझमें यह नहीं आता कि कैसे किसी आदमीका दीन-धर्म जबरन बदला जा सकता है। या कैसे किसी एक भी औरतको जबर्दस्ती भगाया या बेइज्ज़त किया जा सकता है? जब तक हम यह मानते रहेंगे आततायी हमारी ऐसी बेइज्ज़ती करते ही रहेंगे।"[1]

वास्तवमें इस आत्म-घातक बुनियादी कमजोरीको जड़मूलसे उखाड़नेके लिए बहुत बड़े आन्दोलनकी आवश्यकता है। मनुष्य जब आत्म-ग्लानियोंसे भर उठता है और स्वयं अपनी नज़रोंमें पतित हो जाता है, तब उसका उद्धार त्रिलोकीनाथ भी नहीं कर सकते।

**गिर जाते हैं हम खुद अपनी नज़रोंसे सितम यह है।**
**बदल जाते तो कुछ रहते, मिटे जाते हैं ग़म यह है॥**

**—अकबर**

जो धर्म पतितोंको उबारने, विधर्मियोंको अपना बनानेमें संजीवनी शक्ति था। वही आज चौका-चूल्हे, तिलक-जनेऊमें फँसकर समाज-भक्षक बन रहा है।

महिला-समाजकी यह कितनी आत्म-घातक नीति रही है कि झूठ-मूठ दोष लगा देनेपर, या बलात् कोई अधर्म कार्य कराये जानेपर वह स्वयं अपनेको धर्म-भ्रष्ट समझ लेती है! और इस अपमानका बदला न लेकर स्वयं विधर्मियोंमें सम्मिलित हो जाती है।

और नारी-सतीत्व जो उसके अमरत्वके लिए अमृत था, वही अब विषसे भी अधिक घातक सिद्ध हो रहा है। जब स्त्री-पुरुष समान हैं, तब बलात्कार-से केवल स्त्रीका ही धर्म भ्रष्ट क्यों समझा जाता है? पुरुषका धर्म-भ्रष्ट क्यों नहीं होता? नारी ही क्यों तिरस्कृत और घृणित होकर रह जाती है? वह क्यों भोग्य बनी हुई है?

---

[1]हरिजन सेवक १ दि० १९४६ पृ० ४१२।

नारीकी इसी दुर्बलतासे कामुक पुरुष लाभ उठाते हैं। नारी इस कृत्य-को इतना बुरा समझती है कि पुरुषके बलात्कार करने पर भी उसे गोपन रखनेकी स्वयं मिन्नतें करती है। और किसीपर प्रकट न कर दे, इस आशङ्कासे उसके इशारोंपर नाचती है। उचित-अनुचित सभी बातें मानती है। स्वयं अपनेको भ्रष्ट समझती है और भ्रष्ट करनेवाले नर-पशुसे बदला न लेकर उसके हाथोंमें खेलती है।

अतः अब इस प्रबल आन्दोलनकी आवश्यकता है कि नारीसे बलात्कार करनेपर भी उसका सतीत्व अखण्ड रहता है। कोई पापी कुछ ही खिलादे और कुछ भी करले, पर धर्म भ्रष्ट नहीं होता। क्योंकि धर्म आत्माकी तरह अजर-अमर है। न इसे कोई नष्ट कर सकता है, न छीन सकता है, न अपवित्र कर सकता है। जो धर्म आत्माको परमात्मा बनानेकी अमोघ शक्ति रखता है, वह किसीसे भी छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता।

१९ जुलाई १९४८ ई०

# व्यक्तित्व

मनुष्यके निजी व्यक्तित्वसे उसके देश, धर्म, वंश आदिका परिचय मिलता है। अमुक देश, धर्म, समाज और वंश कितना सभ्य, सुसंस्कृत, विनयशील, सेवाभावी और सच्चरित्र है, यह उस देशके मनुष्योंके व्यक्तित्वसे लोग अनुमान लगाते हैं। कहाँ कैसे-कैसे महापुरुष हुए हैं, किस धर्मके कितने उच्च सिद्धान्त हैं, इस पुरातत्त्वका ज्ञान सर्वसाधारणको नहीं होता। वह तो व्यक्तिके वर्त्तमान व्यक्तित्वसे खरे-खोटेका अनुमान लगाते हैं।

दक्षिण अफ़्रीकामें शुरू-शुरूमें भारतसे बहुत ही निम्न कोटिके मनुष्यों-को ले जाया गया और उनसे कुलीगीरीका काम लिया गया। उनकी घटिया मनोवृत्ति और मेहनत-मजदूरीके कार्योंसे भारतके सम्बन्धमें वहाँ-वालोंकी बहुत ही भ्रामक धारणाएँ बन गईं, और वहाँ कुली शब्द ही भारती-यताका द्योतक हो गया। हर भारतीयको अफ़्रीकामें कुली सम्बोधित किया जाने लगा। यहाँ तक कि महात्मा गांधी भी वहाँ इस अभिशापसे नहीं बच पाये।

कलकत्तेमें अक्सर मोटर-ड्राइवर सिक्ख हैं। एक बार वहाँ गुरु नानकके जुलूसको देखकर किसी अंग्रेज़ने बंगालीसे पूछा तो जवाब मिला—'यह ड्राइवरोंके मास्टरका जुलूस है। सुना है वह मोटर चलानेमें बहुत होशि-यार था।' जवाब देनेवालेका क्या क़ुसूर? वह सिक्ख मोटर-ड्राइवरोंकी बहुतायत और मौजूदा व्यवहारके परे कैसे जाने कि सिक्खोंमें भी बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी, शूरवीर, राजे-महाराजे हुए हैं और हैं।

योरुपकी किसी लायब्रेरीमें एक भारतीय पहले-पहल गया और वहाँ किसी पुस्तकसे चित्र निकाल लाया। दूसरे दिन ही वहाँ बोर्ड लगा दिया

गया—'भारतीयोंका प्रवेश निषिद्ध है'। मेरे बचपनकी बात है, सन् १९१७ में अपने रिश्तेदार श्री महावीरजी होते हुए भरतपुर भी उतरे। मैं भी उनके साथ था। महाराज भरतपुरके रंगमहल, मोतीमहल आदि देखने गये तो एक स्थानमें औरतोंको नहीं जाने दिया गया। पूछनेपर मालूम हुआ कि कोई औरत कुछ सामान चुराकर ले गई थी, तबसे औरतोंका प्रवेश वर्जित कर दिया गया है।

विदेशोंमें भारतीयोंके लिए उनकी परतन्त्रता तो अभिशाप थी ही, कुछ कुपूतोंने भारतीयताके उच्च धरातलका परिचय न देकर जघन्य ही परिचय दिया। इससे समस्त यूरुपमें भारतके प्रति बड़ी भ्रामक धारणाएँ बन गईं।

यहाँके अधिकांश राजे-महाराजे वहाँ रंगरेलियाँ करने गये तो, आम-लोगोंको विश्वास हो गया कि भारतीय ऐयाश और पैसेवाले होते हैं, और इसी विश्वासके नाते यूरुपियन महिलाएँ इण्डियन्सके पीछे मक्खियोंकी तरह भिनभिनाने लगीं।

अमेरिका-कनाडामें ग़रीब तबक़ेके सिक्ख मेहनत-मजदूरी करने पहुँचने लगे तो वहाँ समझा गया कि इण्डियन बहुत निर्धन होते हैं, अत: नियम बना दिया गया कि निर्धारित निधि दिखाये बिना कोई भी भारतीय अमरीकन सीमामें प्रवेश नहीं कर सकेगा।

भारतमें जब अंग्रेजोंका प्रभुत्व जमने लगा तो उन्होंने नीति निश्चित कर ली कि भारतमें उच्च श्रेणीके अंग्रेज ही जाने पायें: ताकि शासित जातिपर शासकवर्गका अधिकाधिक प्रभाव जम सके। उक्त नीतिके अनु-सार भारतमें जबतक अंग्रेज उच्च कोटिके आते रहे, उनके सम्बन्धमें भार-तीयोंकी धारणा उच्च-से-उच्चतर बनती गई। लोगोंका विश्वास दृढ़ हो गया कि हिन्दुस्तानी न्यायाधीश, हाकिम, व्यापारी और मित्रसे कहीं

अधिक श्रेष्ट अंग्रेज़ न्यायाधीश, हाकिम, व्यापारी और मित्र होते हैं। ये बातके धनी, वक़्तके पाबन्द, उदारहृदय और ईमानदार होते हैं।

परिणाम इस धारणाका यह हुआ कि अंग्रेज़ जज, हाकिम, डाक्टर, वकील, इंजीनियर, व्यापारी आदि हिन्दुस्तानियोंकी नज़रोंमें हिन्दुस्तानियों-से अधिक निष्पक्ष, योग्य और चतुर बन गये। यहाँ तक कि विलायती वस्तु-के सामने हम स्वदेशी वस्तुको हेय समझने लगे। हमारा अभीतक यही विश्वास है कि विलायती वस्तु ख़ालिस और उत्तम होती है। स्वदेशी नक़ली, मिलावटी और घटिया होती है। लिखा कुछ होगा और माल कुछ और होगा। ऊपर कुछ और अन्दर कुछ और होगा। हिन्दुस्तानीके व्यापार-व्यवहारमें स्वयं हिन्दुस्तानीको नैतिकताकी आशंका बनी रहती है। अंग्रेज़ोंकी उदारता-नैतिकताकी यहाँ तक छाप पड़ी कि बड़े-से-बड़े भारतीय पूँजीपतिके सामानको छोड़कर क़ुली अंग्रेज़का सामान उठायेगा, ताँगेवाले, टैक्सीवाले भी पहले अंग्रेज़को ही तरजीह देंगे। यहाँतक कि मँगते भी पहले उन्हींके आगे हाथ पसारेंगे।

अंग्रेज़ोंके उच्च व्यक्तित्वका जहाँ प्रभाव पड़ा, वहाँ उनके अवगुणोंसे भी लोग शंकित हुए। टामी लोगोंमें सच्चरित्र और विश्वस्त भी रहे होंगे, परन्तु इनका किसीने विश्वास नहीं किया। ये हमेशा यूरुपके कलंक समझे गये। यूरुपियन महिलाओंकी स्वच्छन्दतासे भारतीय इतना घबराते थे कि कोई भी भला आदमी उनके सम्पर्कमें आनेका साहस नहीं करता था। लोगोंका विश्वास था:—

**काजरकी कोठरीमें कैसोहू सयानो जाय,**
**काजरकी एक रेख लागे पर लागे है।**

एक बार एक उद्योगपतिने मुझसे कहा था कि यदि मेरे बराबरके डिब्बेमें भी कोई यूरुपियन महिला सफ़र कर रही हो तो मैं तत्काल उस

डिब्बेको छोड़ देता हूँ। यह लोग कब क्या प्रपंच रच दें, अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक ही आदमीके अच्छे-बुरे व्यक्तित्वसे लोग अच्छे-बुरे अनुमान लगाते रहते हैं।

२-४ आदमियोंकी तनिक-सी भूल उनके देश, धर्म, समाज, वंशके मार्गमें पहाड़ बनकर खड़ी हो जाती है। १०-५ ब्राह्मणोंने लोगोंको विष दे दिया तो लोग कह बैठते हैं ब्राह्मणोंका क्या विश्वास? नाथूराम विनायक गोडसेके कारण, विदेशमें हिंदुओंको और भारतमें ब्राह्मणों, महाराष्ट्रों विनायकों और गोडसोंको कितना कलंकित होना पड़ा है?

ईसाइयोंने अपने सेवाभावी व्यक्तित्वकी ऐसी छाप मारी है कि उनके सायेसे भी घृणा करनेवाले बड़े-बड़े तिलकधारी अपनी बहू-बेटियोंको बच्चा प्रसवके लिए मिशनरी हास्पिटलमें निःशंक अकेली छोड़ आते हैं। सबका अटूट विश्वास है कि उतनी सेवा-परिचर्या घरवालोंसे हो ही नहीं सकती।

मुसलमानोंमें अनेक सदाचारी, तपस्वी और मुन्सिफ़ हुए हैं, परंतु यहाँ चन्द लोगोंने अपने व्यक्तित्वका जो असर डाला है, उसको देखते हुए कोई हिंदू स्त्री अकेली उनके मुहल्लोंसे निकलनेका साहस नहीं कर सकती। जनता तो व्यक्तियोंके वर्त्तमान व्यक्तित्वसे अपनी धारणा बनाती है। उनके पूर्वज बादशाह थे या पैग़म्बर, इससे उसे क्या सरोकार?

अलीगढ़के ताले और लुधियानेकी नक़ली सिल्क-एजेण्टोंके धोखोंसे तंग आकर अलीगढ़ी और लुधियानवी लोगोंपरसे ही जनताका विश्वास उठ गया। कई धर्मशालाओंमें उनके ठहरनेपर भी आपत्ति होती देखी गई है।

कुछ मारवाड़ी फूहड़ और लीचड़ होते हैं। फर्स्ट क्लासमें सफ़र करें तो बाथरूमके बेसिनको मिट्टीसे भर दें, डिब्बेमें पानीकी बाल्टी छलका-छलकाकर सिलबिल-सिलबिल करदें। मारवाड़ी औरतें घूँघट मारे रहेंगी, पर प्लेटफ़ार्मपर बारीक धोती पहनकर नहाएँगी और धोती जम्पर

बदलते हुए अधनंगी भी जरूर होंगी। कलकत्तेसे बीकानेर जाते-जाते बाबुओं और कुलियोंको घूसके पचासों रुपये देते जाएँगे, परन्तु दो रुपये देकर लगेजकी रसीद नहीं लेंगे। इन १००-५० फूहड़ोंके कारण अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित नैतिक मारवाड़ियोंको भी कुलियों और बाबुओंसे तंग होना पड़ता है। चुंगीका जमादार ग़ैरक़ानूनी वस्तुओंके आयात-निर्यात करनेवाले बदमाशोंको तो नजर-अन्दाज़ कर देगा, परन्तु सुसभ्य सुसंस्कृत मारवाड़ीका ट्रंक बिस्तर ज़रूर खुलवायेगा; क्योंकि उसकी धारणा बन गई है कि मारवाड़ीको तंग करनेपर पैसा ज़रूर मिलता है।

एक सम्प्रदाय और प्रान्त विशेषके नौकरीके इच्छुकोंको कलकत्ते बम्बईमें यह कहकर टाल दिया जाता है—

"नौकरी तो है, परन्तु छोकरी नहीं।" अर्थात् जहाँ छोकरी नहीं, वहाँ तुम नौकरी करोगे नहीं और जहाँ छोकरी होगी तुम लेकर ज़रूर भागोगे।"

भारतमें कई जातियाँ ऐसी हैं कि लोग राह चलते रात होनेपर जंगलोंमें पड़ रहना तो ठीक समझते हैं, किन्तु उनके गाँवमें-से गुज़रना मंजूर नहीं करते।

दो-चारके खरे-खोटे आचरण और व्यक्तित्वके कारण समूचा देश, धर्म, समाज, वंश कलंकित हो जाता है, और वे कलंक ऐसे हैं कि नानीके पाप धेवतोंको भुगतने पड़ते हैं।

एक बार एक सज्जन बर्मा गये। वहाँ दो बर्मियोंने उनका यथेष्ट सत्कार किया। प्रवासयोग्य उचित सहायता पहुँचाई। जब वे बर्मासे प्रस्थान करने लगे तो बर्मी मेजबानोंका आभार मानते हुए, बार-बार अपने लिए कोई सेवा-कार्य बतलानेके लिए आग्रह करनेपर बर्मियोंने सकुचाते हुए कहा—"यदि बर्मा-प्रवासमें आपको बर्मियोंकी ओरसे कोई क्लेश पहुँचा हो या उनके स्वभाव-आचरण आदिके प्रति कोई आपने धारणा बना

ली हो तो कृपा कर आप उसे समुद्रमें डालते जायें। अपने देशवासियोंको इसका आभासतक भी न होने दें।"

क्यों? यही तनिक-तनिक-सी धारणाएँ देश-समाजके लिए पहाड़ जैसी कलंक बनकर उभर आती हैं। बनियेके यहाँ लोग बिना रसीद लिये रुपया दे आते हैं। जो देना-पावना उसकी बही बतलाती है, ठीक मान लेते हैं।

इसका भी कारण यही है कि बनिया लेन-देनमें अधिक प्रामाणिक समझ लिया गया है। जितना-जितना अब वह पतनकी ओर जा रहा है, उतना ही वह बदनाम भी होता जा रहा है।

कुछ स्थानोंके निवासी मूर्ख और बुद्धू क्यों कहलाते हैं? क्या इन जगहोंमें सारे भारतके मूर्ख इकट्ठे कर दिये गये हैं, अथवा यहाँ मूर्ख और बुद्धू पैदा ही होते हैं? नहीं, इन शहरोंके १०-५ गधोंने बाहर जाकर इस तरहकी हरकतें कीं कि लोगोंने उनसे उनके प्रान्त और शहरके सम्बन्धमें उपहासास्पद धारणाएँ बना लीं। वे गधे तो न जाने कबके मर गये होंगे, पर उनके गधेपनका प्रसाद वहाँवालोंको बराबर मिल रहा है।

प्रत्येक व्यक्तिको यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके कारण उसका देश-समाज आदि यदि प्रतिष्ठित न हो सकें तो बदनाम भी न होने पाये।

अगस्त १९४८ ई०



# माँकी टेक

मुझे एक प्रतिष्ठित साहित्यिकके पड़ोसमें १५ वर्षके लगभग रहनेका अवसर मिला है। उनकी माताने अपनी कुल जमा-पूंजी अड़ी-भीड़के लिए एक प्रामाणिक फर्ममे जमा की हुई थी, किन्तु फ़र्मका अकस्मात् दीवाला निकल जानेसे उनकी भी सब जमा-पूँजी बट्टे-खाते हो गई। बेचारी किसीसे कुछ न कहकर मन-मसोसकर रह गई।

एक दिन उनकी माताके प्राण-पखेरू उड़ गये तो लाशपर उनकी बहन रुदन करती हुई अपनी माँकी सहृदयताका बखान करते हुए उन रुपयोंका उल्लेख भी कर बैठी। तभी हमारे साहित्यिक मित्रने रुँधे हुए कण्ठसे कहा—"बहन, जिस भेदको माँने अन्तिम समयतक सीनेमें छिपाये हुए रखा, तुमने उसे उनकी आँख फिरते ही उजागर कर दिया। माँकी यह टेक क्षणभर भी तुमसे सम्भाली न जा सकी।"

११ फ़रवरी १९५६ ई०

# भगतसिंहके दो संस्मरण

मास्टर आज्ञाराम सम्भवतः अमृतसरके रामास्कूलमें उर्दू-अध्यापक थे। वे भी साउण्डर्स केसमें दो वर्षके लगभग बन्दी रहे थे। उचित अभियोगके अभावमें सरकारको उन्हें छोड़ना पड़ा था, परन्तु फिर किसी अभियोगमें फाँसकर उन्हें मौण्टगुमरी जेल भेज दिया गया था। उनसे मेरा वहींपर परिचय हुआ था। पहिले तो वे बहुत गुम-सुम रहते थे, फिर स्वभाव आदिसे परिचय होनेपर धीरे-धीरे खुले।

अमर शहीद भगतसिंहको तबतक फाँसी नहीं हुई थी। सोते-बैठते, खाते-पीते अक्सर उनका ज़िक्र लोगोंकी ज़बानपर रहता था। प्रसंग चलनेपर मास्टरजीने कई संस्मरण सुनाये, जिनमें-से निम्न दो याद आ रहे हैं—

[ १ ]

भगतसिंह बचपनमें अपने खेतपर गये तो वहाँ गेहूँ बोते देख कौतुक-वश पूछा—"यह गेहूँ आप मिट्टीमें क्यों फेंक रहे हैं?"

जवाबमें कहा गया कि मिट्टीमें इसलिए फेंक रहे हैं, ताकि एक-एक गेहूँके सौ-सौ दाने पैदा हों।

बाल-सुलभ उत्सुकतावश भगतसिंहने फिर प्रश्न कर दिया—"एक-एकसे सौ-सौ पैदा हो सकते हैं तो फिर गेहुँओंके बजाय बन्दूक़ क्यों नहीं बोते?"

बालककी बातका लोगोंने खूब मखौल उड़ाया, लेकिन यह किसे पता था कि यही बालक एक दिन ऐसी ज़मीन जोत जायगा, जिससे बन्दूक़ लिये वीर पैदा होंगे।

[ २ ]

साउण्डर्स षड्यन्त्रके अभियुक्त जल-पान कर रहे थे कि साथी किशोरीलालके किसी व्यंग्यपर सरदार भगतसिंहको ताव आ गया और उन्होंने प्लेट उठाकर किशोरीलालको खींच मारी। प्लेट किशोरीलालके घुटनेको छूती हुई फ़र्शपर गिरकर चकनाचूर हो गई। प्लेट लगनेसे तावमें आनेके बजाय किशोरीलालने मुसकराते हुए घुटनेको सहलाते हुए बरजस्ता यह शेर पढ़ा—

**रक़ाबी खाके ज़ालिमने मेरे घुटने पै दे मारी।**
**मैं कहता ही रहा ज़ालिम मेरा घुटना-मेरा घुटना॥**

शेरका सुनना था कि यार लोगोंके क़हक़होंसे दरो-दीवार गूँज उठे और बेचारा सरदार झेंपकर रह गया।

४ सितम्बर १९५६ ई०

# स्व और पर

मियाँवाली जेलमें मेरे ही अहातेकी एक कोठरीमें उसी इलाक़ेका एक जंगली क़ैदी भी रहता था, जो किसी जुर्मके फलस्वरूप सज़ा भुगत रहा था। मेरे पास बग़ैर चौखटेके आइनेका एक टुकड़ा था, जिसे हम सब साथी उपयोगमें लाते थे और बहुत सावधानीसे रखते थे। क्योंकि सी क्लासके राजनीतिक बन्दियोंको भी इस तरहके सामान रखनेकी मुमानियत थी। न जाने यह शीशा कौन लाया था, परन्तु रिहा होनेवाले इसे अपने साथ नहीं ले जाते थे और उत्तराधिकारस्वरूप कारागारमें बन्दियोंके पास बना रहता था। मैं जब मार्च १९३२में कारागारसे मुक्त हुआ तो वहाँ कोई अन्य राजनीतिक बन्दी नहीं रह गया था। अत: उस आईनेको पड़ोसी जंगलीने माँग लिया।

चलते समय मुझे मुँह धोनेकी जरूरत हुई और मुँह धोनेके बाद उससे



तनिक आईना माँगा तो उसने ज़मीन खोदकर आईना निकाला। क्योंकि जेल-अधिकारियोंकी सज़ाके भयसे उसने ज़मीनमें छिपा दिया था।

आईना हाथमें लिया तो अचम्भेमें रह गया। उस भोले-भालेने कभी आईना न देखा था। उसने पार्श्वमें लगे मसालेको मैल समझते हुए आईना खुरचकर ज़मीनमें गाड़ दिया था। अब उसमें सूरत क्या नजर आती?

मैं उसकी इस अज्ञानता पर हँस पड़ा। लेकिन उसने अपनी भूल न समझकर यह समझा कि शक्ल देखनेकी तरकीब मैंने क़स्दन बरबाद कर दी है। उसने अपनी जंगली भाषामें जो कहा, उसका आशय था कि—बाबू न देना था तो मना कर देते, इस छलकी क्या जरूरत थी?

जंगलीको क्या जवाब देता, हँसता हुआ वहाँसे चल दिया। मार्गमें विचार आया—'दर्पणमे जब पर–द्रव्य लगा था, तब अपने अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर न होता था, वह छूट गया तो अपने अतिरिक्त और सब कुछ दिखाई देने लगा। आत्माके साथ शरीर चिपका हुआ है, इसीसे अहम्‌के सिवा उसे कुछ सुझाई नहीं देता। अपना रूप, अपना कुल, अपना वैभव, अपना नाम, अपना यौवन, अपना परिवार, अपना हित, जब देखो आप-ही-आप प्रतिबिम्बित होता है। परकी उसे झलक भी दिखाई नहीं देती। विश्व किस संकटसे गुज़र रहा है, अपनी कीर्ति-लिप्साके पीछे कितनोंके मान भंग हुए हैं। अपने महल-अटारोंकी नींवमें कितनोंकी जान सिसक रही है। अपने भोग-विलासमें कितनोंकी बलि लगी है। अपने प्रीति-भोजोंके परिणाम-स्वरूप कितने घरोंमें चूल्हा नहीं जला है और अपनी रंगशालाको चित्रित करनेमें कितने अभागोंका रक्त लगा है। सशरीरी आत्मा यह सब देख नहीं पाता। शरीररूपी पर द्रव्य छूटते ही उसे विश्व दिखाई देता है। उसका स्व फिर स्व न रहकर विश्वमें लीन हो जाता है। शरीर-बन्धनसे मुक्ति पाते ही आत्मा परमात्मा होता है।

१० मार्च १९५६ ई०

# मतलबी

सन् १६२७ की शरद्-ऋतुकी बात है, मैं रातकी ट्रेनसे लुधियानेसे दिल्ली जा रहा था। सामनेकी बेंचपर दिल्लीका ही एक जुगल जोड़ा बैठा हुआ था। पानदान साथ था। घूँघट निकाले हुए श्रीमतीजीने दो पान लगाये और अपने पतिकी ओर बढ़ा दिये। एक मेरे लिए, एक अपने पतिके लिए। अम्बाले पहुँचते-पहुँचते पानके कई दौर हुए।

अम्बालेमें दिल्ली जानेके लिए मैं दूसरी ट्रेनमें सवार हो गया, उन्हें उसी ट्रेनसे वाया सहारनपुर दिल्ली जाना था। मगर थोड़ी ही देरमें वे भी मेरे ही डिब्बेमें आ बैठे, और बोले—"साथ छोड़नेका जी न चाहा।" साथ छोड़नेका किसका जी न चाहा, यह समझते मुझे देर न लगी। पानके दौर फिर शुरू हो गये। उनकी श्रीमतीजी उनसे फुसफुसा कर बोलीं—"अच्छा इनसे सलाह ले लीजिये।" पति मुझसे बोला—"आप एक सलाह दीजिये। हमारे ससुरके मित्र अजमेरमें बीमार हैं। यह उन्हें देखने चलनेको कहती हैं। मेरी मर्जी जानेकी है नहीं। इन्होंने फ़ैसला आप पर छोड़ा है। जो आप सलाह देंगे, वही हम दोनों मानेंगे।"

मुझे न जाने क्या मज़ाक़ सूझा। उन श्रीमतीजीको चिढ़ानेकी नीयतसे बोला—"भाई, आने-जानेमें १००-१५० रुपया स्वाहा हो जायेंगे। मध्यम वर्गके लिए यह रक़म मामूली नहीं। साल भरमें भी नहीं जुड़ती। ससुरके मित्रके लिए इतना रुपया खर्च करके जाना मेरी समझमें तो व्यर्थ है। गृहस्थीमें सौ बातोंका ख्याल रखना पड़ता है। तन-मन मसोसकर अड़ी-भीड़के लिए जो दो-चार पैसे एकत्र होते हैं, वह यूँ पानीमें नहीं बहा दिये जाते। बीमारी आदिका बहाना लिखकर चुप्पी खींच जाओ।"

मेरी बात सुनकर पति देवता खिल उठे और कहने लगे—"सुन लो

जो मैं कहता था, वही इन्होंने भी कहा। अब तो तुम्हारी समझमें आया।"

मेरी मौलवियाना नसीहतसे श्रीमतीजी कुम्हला-सी गईं और मुँह फेर कर बोलीं—"ये मरद सभी मतलबी होते हैं। पैसेको जानसे ज्यादा समझते हैं। प्यार-मुहब्बत उसके आगे इनकी नजरोंमें कुछ भी नहीं।"

बात वहीं खतम हो गई। नक्शा बिगड़ा हुआ-सा देख मैं भी लिहाफ़ ओढ़कर लेट गया। थोड़ी देरमें फिर पान लगे। पतिने कहा—"दो पान क्यों, ये तो सो गये।" आवाज आई—"सोये नहीं हैं, पान दे दो।" और बराबर दिल्लीतक वक़्तन-ब-वक़्तन पान जब भी लगे, मुझे लिहाफ़में दिये गये, और मैं मतलबी पान बराबर लेता रहा, 'न' कहनेकी फिर हिम्मत नहीं हुई! उनके घरका पता पूछनेका भी साहस न कर सका।

१५ अक्तूबर १९५५ ई०

# क़ैदी बनाम इन्सान

सन् १६३२ की बात है, मियाँवाली जेलमें एक क़ैदी एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मर गया। न उसे देखने डाक्टर आया, न उसे दवा मिली, न उसकी किसीने परिचर्या की। सुबह होनेपर उसकी लाश ठिकाने लगायी जानेके लिए जेलसे बाहर ले जाई जा रही थी तो वहींके क्वार्टरोंमें रहनेवाली तमाशायी औरतोंमें से एक बोली—

"मैं तो समझी कोई बन्दा (इन्सान) मर गया है, यह तो मुआ क़ैदी निकला।"

उसके बन्दी-जीवनने मानो उसकी मानवता भी छीन ली थी। वह उनकी नज़रोंमें इन्सान नहीं, हैवान था।

१६ जून १९५५ ई०

# मुँह न दिखाना

खत्रीसे अधिक गोरा कोढी और नाईसे ज्यादा सयाना कौवा—इस कहावतके अनुसार यूं तो प्राय सभी नाई चुस्त और चतुर होते है, पर न्यादर नाई अपने हुनरमे कमाल रखता था। मैने उसे उसके बुढापेमे देखा था। वाल वह बहुत कम बनाता था। दिल्लीमे जैनियोका वह नाई था। शादी-विवाहो आदिसे उसकी काफी आमदनी थी। घरका मकान था। शादि-



योके बुलावे देनेके वक्त वह बडी सज-धजके साथ लाला लोगोके आगे-आगे चलता था। अक्सर पाँवमे सलेमशाही जूती, चूडीदार पायजामा,

मौसमके अनुसार अँगरखा पहिने, सरपर गोलेदार पगड़ी लगाये, कन्धेपर क़ीमती दुशाला डाले हुए होता था। उसकी सज-धज और अन्दाज़े-गुफ़्तगूका यह आलम कि एक बार वह किन्हीं रईसे-आज़म रायबहादुरकी लड़कीकी सगाई लेकर गया तो वर-पक्ष उसे रायबहादुर ही समझकर स्वागतको खड़े हो गये। लेकिन उसके यह कहने पर कि "आप नाहक़ मुझे इतनी इज्ज़त बख्श रहे हैं, मैं तो आपका एक अदना ग़ुलाम हूँ" बहुत झेंपे।

वफ़ादार, नेक, चतुर और वृद्ध होनेके कारण सभी उसे मानते थे। चुहलबाज़ भी था। हम बच्चे अक्सर उससे पुराने ज़मानेकी बातें सुनते। छेड़-छाड़ भी करते। एक रोज़ कम्बख़्तीकी मार कि मैं उससे बाल कटवाने बैठ गया। बाल कटवाते हुए पासमें रखा आईना मुँहके सामने मैं अभी ले भी न गया था कि वह कंधा-क़ैंची नीचे रखकर दूसरी तरफ़ देखने लगा। मैंने सबब पूछा तो मुसकराकर बोला—"आप आईनेसे जबतक शग़ल-फ़रमायें मैंने सोचा मैं तबतक बाज़ारकी सैर देख लूँ।"

मैंने चुपचाप आईना रख दिया, वह फिर बाल बनाने लगा। नाख़ून काटनेके लिए उसने नहन्ना उठाया तो मैंने अपने नाख़ून पानीसे भिगो लिये। वह नहन्ना रखकर फिर बाज़ारकी तरफ़ देखने लगा। सबब पूछा तो बोला—"अब मैं अपना हुनर क्या दिखाऊँ? ये मुलायम नाख़ून तो हर ऐरा-ग़ैरा काट सकता है।"

दूरन्देश वह बलाका था। मेरी शादी दिल्ली-की-दिल्लीमें हुई है। फेरोंके लिए भाई साहब घरसे जेवरात और ज़रूरी सामान ट्रंकमें भरकर ताँगेमें रखवाने चले तो उसने जेवरके डिब्बे ट्रंकमें-से निकालकर चुपचाप दुशालेमें लपेटकर बग़लमें दाब लिये। जनवासेमें पहुँचे तो सब सामान तो मिल गया, परन्तु वह जेवरवाला बक्स न देखकर भाई साहब घबरा गये कि वह ट्रंक तो ताँगेमें ही रह गया। दौड़कर देखा तो ताँगेवालेका

पता न था। भाई साहब अब किससे क्या कहें, जेवर और कपड़ा अब दुबारा इतनी जल्दी कैसे जुटायें। इसी परेशानीमें खड़े थे कि दूसरे ताँगेसे न्यादर भी पहुँच गया और जाते ही जेवरातके डिब्बे भाई साहबके आगे रख दिये। भाई साहबके आश्चर्यचकित होकर पूछनेपर कि 'यह तुम्हारे पास डिब्बे कैसे आये ? वह ट्रंक कहाँ है ?'

न्यादरने बताया कि जेवर तो मैंने इसी खयालसे कि कहीं भाग-दौड़में ट्रंक रह न जाये, घरपर ही निकालकर बग़लमें दबा लिये थे। मैंने समझा कि आपने देख लिये हैं।

रातको पाणिग्रहणके समय जब वरमाला डालनेके लिए कन्या-पक्षसे विवाहाचार्य्यने मालाएँ तलब कीं तो वे एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। मालाएँ रखनेका किसीको ध्यान ही नहीं रहा था। उन्हें एक-दो मिनट लज्जित-सा हुआ देखकर न्यादरने अपनी बग़लमें दबे तौलिएसे मुसकराते हुए दो हार निकाले।

वक़्तपर जेवर और हारोंका न मिलना कैसी स्थिति उत्पन्न कर देता, कल्पनासे ही मन सिहर उठा। लगे हाथ नाइयोंकी चतुरताका एक लतीफ़ा भी सुन लें।

एक बार किसी यजमानने एक नाईसे ख़फ़ा होकर कह दिया—"आदमीका बच्चा है तो, आइन्दा मुझे मुँह मत दिखाना।"

यजमान चाहे ग़रीब हो या अमीर, उसकी बातका बुरा क्या मानना। यजमान आख़िर यजमान हैं। उन्हींकी बदौलत तो बाल-बच्चोंकी परवरिश होती है। मगर उक्त वाक्य कुछ इस ढंगसे कहा गया कि नाईने उनको मुँह दिखाना फिर उचित नहीं समझा।

दशहरा आया तो नाई पसो-पेशमें पड़ गया। अपने-अपने यजमानको उस रोज़ आईना दिखाकर नाई इनाम-इकराम लेते हैं। इनाम-इकरामकी

तो कोई ऐसी बात नही। मगर आईना यजमानको न दिखाना उसका अमंगल समझा जाता है। अतः यह कैसे सम्भव होता कि वह अपने यजमानका अमंगल चाहे, परन्तु मुँह दिखानेको भी जी न चाहता था। बहुत सोच-विचारके बाद अपनी पीठसे आईना बाँधकर उनके यहाँ पहुँचा और दुशालेसे मुँह ढककर पीठ उनकी तरफ़ करके बोला—"हुज़ूरकी जान-मालकी सलामती बनी रहे। दुश्मनकी छातीपर लात मारकर यह दिन आया है। अपना चन्द्र-मुख दर्पणमे देखनेकी कृपा करे।"

लालाने नाईको देखा तो चराग़-पा होकर बोले—"क्यों बे नाईके, तेरी इतनी मजाल, हमको पीठ दिखाता है? मैंने जब कह दिया था कि आइन्दा अपना मुँह न दिखाना, फिर भी तू क्यों आया?"

नाईने उसी तरह पीठ किये और मुँह ढाँपे हुए अर्ज किया—"कौन नालायक़ आपको मुँह दिखा रहा है? इसीलिए तो पीठपर आईना बाँधकर आया हूँ। और हुज़ूर बेअदबी माफ़, आपको तो अच्छे-अच्छे अफ़लातून पीठ दिखा गये, फिर मैंने भी पीठ दिखाई तो क्या गुनाह किया?"

नाईकी इस हाज़िर जवाबीपर लाला खिल उठे। अपने हाथसे दुशाला उतारकर पहिले उसका मुँह देखा, फिर दर्पणमें अपना मुँह देखा और खूब इनाम देकर बिदा किया।

३१ अगस्त १९५६ ई०

# हमारे भी हैं क़द्रदाँ कैसे-कैसे

आल इण्डिया कांग्रेसके गया-अधिवेशनके सभापति, खरे देशभक्त और डाक्टरीमें भारत वर्षीय ख्यातिप्राप्त स्वर्गीय डाक्टर अन्सारी बी. एस. सी. की परीक्षामें युनिवर्सिटी भरमें सर्व प्रथम आनेपर हैदराबाद स्टेटकी छात्रवृत्ति लेकर डाक्टरीकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विलायत गये थे।

शिक्षा समाप्त करके जब वे भारत लौटे तो नैतिकताके नाते वे सीधे हैदराबाद गये और स्टेटको अपनी सेवाएँ समर्पित कर दीं। छात्रवृत्ति देनेके कारण उनकी सेवाओंसे लाभ उठानेका पहला हक़ उक्त स्टेटको था। लेकिन क़द्रदानीका वहाँ यह आलम था कि स्टेटका हॉस्पिटल सुपुर्द करनेके बजाय आपको किसी देहातमें ओवरसियरीके कामपर भेज दिया।

कहाँ डाक्टरी और कहाँ ओवरसियरी? कोहेनूर और गधेके गलेमें? आख़िर इन ना-क़द्रोंसे तंग आकर डाक्टर साहब दिल्ली चले आये और उसीको अपने कार्यक्षेत्रके लिए चुना। वहाँ पहुँचते-पहुँचते आपने चिकित्सा और राष्ट्रीय क्षेत्रमें अखिलभारतीय ख्याति प्राप्त कर ली। राष्ट्रीय कार्योंमें वे पेश-पेश रहते थे और चिकित्साके लिए बड़ी-बड़ी रियासतें उनकी बाट जोहा करती थीं। ग़रीबपरवर ऐसे थे कि उनके चिकित्सालयमें रईस-ग़रीबमें कोई अन्तर न होता था। अभी एक क्षणपूर्व किसी राजा या नव्वाबका एक्ज़ामिन कर रहे हैं तो दूसरे क्षण किसी ग़रीबको ढाढ़स बँधा रहे हैं, उसकी चिकित्साका निःशुल्क प्रबन्ध कर रहे हैं। उनपर दिल्लीवालोंको नाज़ था। वे क्या गये, दिल्लीके डाक्टरी-अभिमानको अपने

साथ ले गये। आज दिल्लीके गली-कूचोंमें डाक्टरोंकी भरमार है
डा० अन्सारी-जैसा सिद्धहस्त एव दीनबन्धु डाक्टर कहाँ?

बक़ौल इक़बाल —

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा॥

७ जुलाई १९५६ ई०


श्रुति

# छोटे मियाँ सुबहान अल्लाह

इन्सानके दम घोटनेवाले नित नये क़ानूनोंकी ईजादोंके प्रसंगपर तरुण कवि रंग साहबने मेरे ग़रीबख़ानेपर १४ अगस्तकी एक मुख़्तसिर-सी कवि-गोष्ठीमें बरमहल एक लतीफ़ा सुनाया तो हँसीके मारे पेटोंमें बल पड़-पड़ गये। एक तो प्रसंग, दूसरे उनका अन्दाज़े-बयान। दोनोंने मिलकर वह सितम ढाया कि कुछ न पूछिये। उन जैसा लहजा मेरे पास कहाँ, फिर भी पेश कर रहा हूँ।

एक बड़े मियाँ ताज़ी क़ब्रोंको खोदकर क़फ़न निकाल लिया करते थे। और उसे बाज़ारमें बेचकर बीबी-बच्चोंकी परवरिश किया करते थे। मरने लगे तो अपने जवान लड़केको मुख़ातिब करके फ़रमाया—"बेटे, हम तो अब अल्लाहके प्यारे हो रहे हैं। मगर तुम हमारी इज़्ज़तो-आबरूको क़ायम रखना। ऐसा न हो कि आँख झपकते ही गाँववाले हमें भूल जायें।"

बड़े मियाँके सरपर हाथ फेरते हुए लड़का बोला—"अच्छे अब्बा, आप यह क्या फ़रमा रहे हैं? गाँववाले आपको भूल जायें, यह हरगिज मुमकिन नहीं। उठते-बैठते उनको आपकी याद सतायेगी। आप इत्मीनान रखें, आपकी खूबियाँ तो बरक़रार रखूँगा ही, उनमें चार चाँद लगा दूँगा। ख़ुदा गवाह है कि जन्नतमें आप मुझपर बजा-फ़ख़्र कर सकेंगे।"

लड़केके इत्मीनानपर बड़े मियाँने सब्रो-सकूनके साथ जन्नतके लिए हिजरत की। दो-चार रोज तो लड़केकी समझमें कुछ न आया कि बुज़ुर्गवारकी इज़्ज़तको किस तरह दुबाला किया जाय, मगर सोचते-सोचते हल निकल ही आया।

गरम तेल तेरे बिलमें डालकर पहिले तुझे मार डाले फिर धनको गाड़ियोंमें भरकर राजधानी ले जाये।"

जंगली साँपने भी तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया—"यह तेरे लिए अच्छा ही है जो राजकुमार सोया हुआ है। अगर वह सुनले कि काँजी पीनेसे पेटके कीड़े मर जाते हैं तो फिर तेरी ख़ैर नहीं।"

राजकुमारने दोनोंकी बात गिरह बाँधली। साँपके पेटमें चले जानेपर उसने घर जाकर पहिले काँजी पीकर पेटके साँपसे छुटकारा पाया फिर धन राशिपर भी अधिकार जमाया।

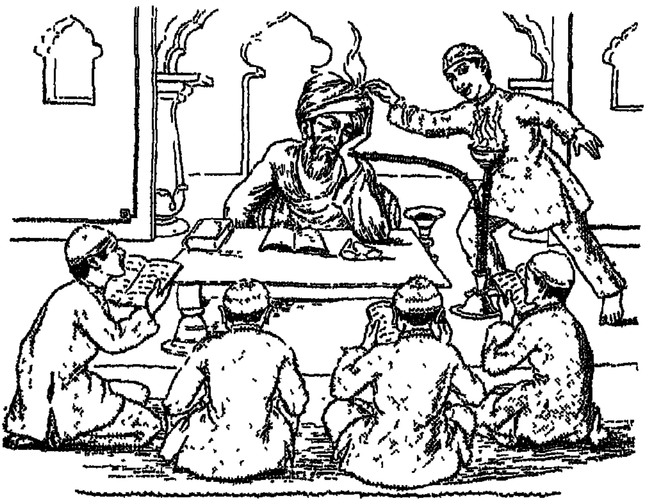
१ सितम्बर १९५६ ई०

# मौलवीको लड़कोंने सबक़ पढ़ाया

याद करो लड़को—

| | | |
|---|---|---|
| दस्तार | मायने | पगड़ी |
| आतिश | मायने | आग |
| ग़लबा | मायने | हमला। |

मौलवी साहब पढ़ाते-पढ़ाते अफ़ीमकी पीनकमें झपकी लेने लगे और लड़के इन मायनोंको ज़ोर-ज़ोरसे बोलकर याद करने लगे। एक ज़हीन लड़केने सबक़ घोखते-घोखते सोचा कि क्यों न एक ऐसा जुमला बनाया जाय, जिसमें यह तीनों अल्फ़ाज़ चस्पां हो सकें। सबक़ रटते-रटते उसकी नज़र मौलवी साहबके हुक़्क़ेकी तरफ़ गई तो चट एक जुमला बन गया।



उसने चिलमसे एक चिनगारी उठाकर चुपके-से मौलवी साहबके सरकी पगड़ीमें डाल दी, फिर ज़ोर-ज़ोरसे सबक़ रटने लगा, "मौलवी साहब तुम्हारी दस्तारमें आतिशने ग़लबा किया, मौलवी साहब तुम्हारी दस्तारमें आतिशने ग़लबा किया।"

मौलवी साहब पीनकमें ही बड़बड़ाये—

"शाबास इसी तरह रटे जाओ" और फिर झपकियाँ लेने लगे।

थोड़ी देरमें पगड़ीकी आग जब मौलवी साहबकी चाँद तक पहुँची तो घबराकर उन्होंने पगड़ी सरसे उतार फेंकी और वह देखते-देखते जलकर ख़ाक हो गई।

मौलवी साहब झल्लाकर बोले—"क्यों बे नालायक़ो बताया तक नहीं, अगर मेरे दूसरे कपड़ोंने आग पकड़ ली होती तो क्या होता?"

"कई रोजकी छुट्टियाँ होतीं और क्या होता?" जवाब तो लड़के यह देना चाहते थे, परन्तु बेतको सामने देखकर सहम गये और दबी ज़बानसे बोले—हम तो ख़ूब ऊँची आवाज़में—'मौलवी साहब तुम्हारी दस्तारमें आतिशने ग़लबा किया'—पुकार-पुकारकर आपको बेदार करनेकी कोशिश करते रहे, मगर आपने तवज्जह ही नहीं फ़रमाई। इसमें हमारा क्या क़ुसूर?" मौलवी साहब फिर कभी मक़तबमें नहीं ऊँघे।

९ जुलाई १९५६ ई०

# ज़ाके न फटी बिवाई

मन्दिरकी दरी गुम हो जानेपर पुजारीजी इधर-उधर तलाश करने लगे। एक-एक सन्दूक़; अलमारी बीसोंबार खोलकर देखें। किवाड़ोंके पीछे, चटाई और बोरीके नीचे झाँककर देखा, मगर दरी न मिली। अन्तमें खोजते हुए आलेमें रक्खे हुए लिफ़ाफ़ेको भी उठाकर देख लिया। पुजारीजीकी इस वहशतको देखकर एक दर्शक बोले—"पुजारी-जी! क्या इतनी बड़ी दरी भी लिफ़ाफ़ेके अन्दर छिप सकती है?" पुजारीजीने कहा—"लिफ़ाफ़ेके नीचे दरी नहीं छिप सकती, यह तो मैं भी जानता हूँ, पर जब कोई चीज़ गुम हो जाती है, तब ऐसी वहशत सभीको हो जाती है। कटोरीमें हाथी छिपनेकी आशंका होने लगती है। मालूम होता है कभी आपकी वस्तु गुम नहीं हुई।

जनवरी १९४० ई०

# न भूतो न भविष्यति

एक नये रईस अपने लड़केकी शादी इस खूबीसे करना चाहते थे कि लोग-बाग अश-अश कर उठें और कहें कि ऐसी शादी न कभी देखी-सुनी और न देखें-सुनेंगे। उनके पड़ोसमें एक वयोवृद्ध महिला रहती थी, जिसके पास गाँवके छोटे-बड़े जाकर दुःख-सुखमें परामर्श लिया करते थे। उन रईसने भी जाकर मनकी बात कही तो वृद्धा बोली—"यह तो तुम्हारी इच्छापर है बन्ने! जैसा गुड़ डालोगे, वैसा ही मीठा होगा। तुम कितना खर्च करना चाहते हो? औरोंकी होड़ करना व्यर्थ है। संसारमें एक-से-एक माईके लाल मौजूद हैं।"

नये रईसने अहंकारपूर्वक जवाब दिया—"ताई मैं औरों-जैसी शादी नहीं करना चाहता। फिर मुझमें और सबमें अन्तर क्या रहेगा? मैं ऐसी मिसाल क़ायम करना चाहता हूँ कि लोग पुश्त-दर-पुश्त जिक्र करते रहें। मैं दिलके अरमान निकालना चाहता हूँ।"

वृद्धा वात्सल्य भावसे बोली—"हाँ बेटे, हौसला बड़ी चीज़ है। दिलके अरमान अब न निकालोगे तो फिर कब निकालोगे? आखिर यह रुपया कमाया किस लिए जाता है?"

"हाँ ताई, मैं दिल खोलकर खर्च करना चाहता हूँ। शादीमें क्या बाँटूं, कैसी दावत दूं, कितनी बारात ले जाऊँ, सब बातें मुझे विस्तारसे समझा।"

"यही बात मर्दोंको शोभा देती है, बेटे ज़रा ठहर, मैं अभी आई।"

वृद्धा अन्दर गई और एक सोनेका कटोरा लाकर बोली—"बेटा बाँटनेका क्या है, लोगोंने खजाने लुटा दिये हैं, राज बाँट दिये हैं। ५०-५० ऊँटोंपर लादकर अशर्फियाँ लोगोंने बखेरी हैं। फुलवारियोंमें नोट लगाये

हैं। तुम्हें तो अपनी हैसियतके अनुसार ही काम करना चाहिए। समाईसे ज्यादा खर्च करनेमें जग-हँसाई होती है। तेरे ताऊ एक बारातमें गये थे, वहाँ एक हज़ार बारातियोंको आध-आध सेरके सोनेके यह कटोरे मिले थे। तू उससे ज्यादा नाम चाहे तो हीरा-मोती जड़वाकर बाँट दे। नगर दावतें तो मैं कई बार देख चुकी हूँ, तू ज़िलेकी कर दे और ज्यादा चाहे तो सूबे भरकी दावत कर दे।"

वृद्धाको आशा थी कि शादीमें कटोरेकी जोड़ी हो जायगी, पर सोनेका कटोरा न आकर मुरादाबादी गिलास आया। जिसपर तीन पंक्तियोंमें वितरकोंके नाम लिखे हुए थे। दावतके नामपर वनस्पति घीके चार लड्डू आये और इस प्रकार वह "न भूतो न भविष्यति" विवाह सम्पन्न हुआ।

**६ अक्तूबर १९५५ ई०**

# आबरू बिगाड़ना-बनाना

एक रईसजादे दोस्तोंमें अक्सर अपनी दरिया-दिलीकी डींगें हाँका करते और औरतोंकी कंजूसीका मजाक़ उड़ाया करते थे। एक रोज तंग आकर बीबीने कहा "आप ज्यादा शेखी न बघारा कीजिए। यह इज्जत-आबरू हमीं लोगोंकी वजहसे बनी हुई है। चाहें तो दमभरमें किरकिरी कर दें।"

मगर रईसजादे मान कर न दिये, उनका वही बतीरा बना रहा। एक रोज़ बैठकमें उनके कुछ खास-खास दोस्तोंकी मौजूदगीमें उनका ७-८ बरसका बच्चा आकर बोला—"अब्बा हुजूर खाना बन गया है, चलकर तक़सीम कर दीजिये। हमको भूख लगी है, फिर स्कूल भी जाना है।"

सुनकर रईसजादेका चेहरा फ़क़ हो गया, काटो तो खून नहीं। अभी बच्चा जाने भी न पाया था कि उनकी खादिमाने आकर अर्ज़ किया—"सरकार, ग़रीब-ग़ुरबा आ गये हैं, चलकर खाना उन्हें तक़सीम कर दीजिए। ताकि उनके बाद बच्चे भी खाकर वक़्त पर स्कूल पहुँच सकें।"

रईसजादेकी इज्जतका भाण्डा चौराहेपर फूटते-फूटते बचा। वे तुरन्त अन्दर गये और मुसकराते हुए बोले—"बेगम मानते हैं आपको। एक ही जुमलेमें आबरू बिगाड़ भी सकती हैं और बना भी सकती हैं। तोबा करते हैं सरकार, जो आजसे कभी चूँ भी करें आपके सामने।"

बेगम खड़ी-खड़ी मुसकराती रहीं।

६ अक्तूबर १९५५ ई०

# माँके दर्शन

जहाँगीर बादशाहका शासन-काल था। आगरेके क़िलेमें मीना-बाजार लगा हुआ था। यह जनाना बाज़ार भी कहलाता था। क्योंकि इस बाज़ारमें महिलाएँ ही सामान बेचती थी, महिलाएँ ही ख़रीदती थीं। बादशाहके अतिरिक्त अन्य पुरुषका प्रवेश निषिद्ध था। इस बाज़ारमें मलिका, बेगमात, रानियाँ, ठकुरानियाँ, शाहज़ादियाँ, राजकुमारियाँ, रईसज़ादियाँ, ग़रीब-अमीर सभी महिलाएं बेपरद घूमतीं, चुहल करतीं। एवं ख़रीदो-फ़रोख़्त करती थी।

आगरेका एक युवक मुसलमान सौदागर भी इस मेलेमें जानेकी प्रबल आकांक्षा रखता था। उसने भी वहाँ एक दूकान ली थी, जिसपर उसकी पत्नी जाकर बैठती थी। अपने साथ नारी-वेशमें ले चलनेके लिए उसने पत्नीकी काफ़ी मिन्नत-समाजत की, मगर वह रजामन्द न हुई। उसका कहना था कि—"वहाँ बहुत होशियारीसे जाँच की जाती है, शक होते ही पहरेदार तातारनियाँ खटसे सर क़लम कर देंगी। हमें ऐसी ग़लती हरगिज-हरगिज़ नहीं करनी चाहिए।"

मन मारकर सौदागर कुछ दिनोंके लिए आगरेसे टल गया। इसी अर्सेमें उसकी पत्नीके पास एक हसीना युवती आई जो अपनेको उसकी ननद बतलाती थी। उसने बताया कि "तुम्हारी शादीसे २-३ साल क़ब्ल हम ईरान रहने लगे थे। बावजूद कोशिशके भी हम शादीमें शरीक न हो सके, जिसका हमें बेहद मलाल है। अब ब-मुश्किल चन्द दिनोंके लिए हिन्द आना हुआ है। आते ही तुमसे मिलने आई हूँ। भाईसे मिलकर दो-चार रोजमें चली जाऊँगी।"

शको-शुबहकी कोई गुंजाइश न थी। शक्लो-शबाहत, नक़्शो-निगार सभी कुछ शौहरसे हू-ब-हू मिलते थे। बीबीने पुरतपाक़ उसका ख़ैरमक़दम किया। आँखोंपर बिठाया। ख़ातिर-तवाज़ामें ज़मीनो-आसमान एक कर दिये। दिन भर खूब घुल-मिलकर बातें कीं। रातको दोनों ननद-भावज मीना बाज़ार गईं। भावज तो दुकानपर बैठ गई और ननद घूम-फिरकर बाज़ार देखने लगी।

मीना बाज़ारमें हस्ब दस्तूर जहाँगीर और नूरजहाँ चहल-क़दमी कर रहे थे कि भीड़में-से गुज़रते हुए नूरजहाँने कहा—"जहाँपनाह!"

जहाँगीर—मलक-ए-आलम!

नूर—बाज़ारमें कोई मर्द मालूम होता है?

जहाँगीर—जी आपका गुलाम मौजूद है।

नूर—नहीं जहाँपनाह, आपके अलावा कोई बाहरी मर्दुआ मालूम होता है।

जहाँगीर—यह आप क्या फ़रमा रही हैं, जाने-मन!

नूर—मैं सच अर्ज़ कर रही हूँ। आज मुझपर फिर चाहतकी नज़र पड़ रही है। भीड़में पहचान नहीं पा रही हूँ। मगर यह अम्र यक़ीनी है।

बादशाह मलिकाको साथ लेकर तुरन्त अन्तःपुर चले गये, परन्तु जाते हुए बाज़ारके व्यवस्थापकको आज्ञा दे गये कि बाज़ार बन्द होनेसे पहिले-पहिले दरवाज़ेके बाहर सवा गज़ चौड़ी और हाथ भर गहरी खाई खुदवाकर उसमें पानी भर दिया जाय। खाई खुदनेतक किसीको बाहर न निकलने दिया जाये और बाहर निकलते वक़्त जो मस्तूरात पानीमें पाँव देकर पार हों, उन्हें कुछ न कहा जाय। सिर्फ़ उसे गिरफ़्तार किया जाय जो छलांग मारकर खाईके पार हो जाये।

बाज़ार बन्द होनेका वक़्त हुआ ही था कि सौदागर-पत्नीकी ननद मुश्कें बँधी हुई बादशाहके समक्ष उपस्थित की गई। उस वक़्त बादशाहके

क्रोधकी सीमा न रही। जलील, कुत्ते, नाहंजार, मरदूद, कमीने वग़ैरह गालियाँ देनेके बाद हुक्म हुआ—"इसे शहरके चौराहेपर आधा गाड़कर गुड़ लपेट दिया जाय, ताकि कुत्ते इसकी बोटियाँ चबा डालें और दूसरोंको इबरत मिले।"

जल्लाद जब उसे ले जाने लगे तो बादशाहने कड़ककर पूछा—"तुमने यह गुस्ताख़ी करनेकी हिम्मत क्यों की ?"

"आलीजहाँ, मुझे अब मरनेका ग़म नहीं, मैंने आज अपनी माँको देख लिया, मेरी सारी तमन्नाएँ पूरी हो गईं।"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"मेरे पैदा होते ही माँ अल्लाहको प्यारी हो गई। चची खालाने परवरिश की, उन्होंने लाड़-प्यारकी मुझपर बारिश कर दी। घरमें बेशुमार दौलत थी, फिर भी माँकी कमी मुझे खटकती रही। शायद मैं महसूस भी न करता। क्योंकि मैंने उसे न देखा था न उसका प्यार पाया था। लेकिन घर और बाहर उसका अक्सर ज़िक्र रहता था। माँ इतनी नेक, सुघड़ और स्वभावकी भली थी कि बात-बातपर उसका ज़िक्र चलता था। रंग-रूपका ज़िक्र चलनेपर सभी कहते रहते कि 'जिसने इसकी माँको न देखा हो, वह नूरजहाँ मलिकाको जाकर देख ले। कहीं हव्वा भर भी फ़र्क़ नहीं।' रोज़ाना माँका ज़िक्र और उनके साथ मलिक-ए-आलमकी मुशाहबत सुनते-सुनते मैं उनका नियाज हासिल करनेके लिए बेताब हो उठा। ज़र्रेकी क्या बिसात जो सूरजतक पहुँच सके। इसलिए मैंने इस मौक़ेको अपनी पाक ख्वाहिशके लिए मौज़ूँ समझा। अपनी माँ का दीदार मुझे नसीब हो गया। अब आप जो भी सज़ा दें हक़-ब-जानिब हैं। बड़ी-से-बड़ी सज़ा मेरे इस गुनाहके लिए नाकाफ़ी है।"

परदेमें जलवा-फ़रमाँ मलिकाने सुना तो उनका रोम वात्सल्यसे भीग उठा। उन्होंने पास बुलाकर उसकी पेशानीको बोसा दिया और उसे बहुत लाड़-प्यारके साथ बिदा किया।

३१ अगस्त १९५६ ई०

# जूतेकी बदौलत बादशाह

सन् १८५७के स्वतन्त्रता-युद्धके दिनोंमे दिल्लीके लाल किलेमें कुछ विद्रोही सैनिक परस्पर चुहल कर रहे थे कि सामनेसे बादशाह-को अकस्मात् आते देखकर एक सिपाहीने चुप रहनेका इशारा किया, तो दूसरा सिपाही बोला—'परवाह न कर, बादशाह आता है तो आने दे, हम जिसके सर पर जूता रख दे वही बादशाह बन जायगा।"

शतरंजके बादशाहसे भी गया-गुजरा बेचारा बहादुरशाह बादशाह चुपचाप निकल गया।

१ अप्रैल १९५६ ई०

द्युति

# वीर-बभ्रुवाहन

वनवासके समय गुप्तवेशमें पाण्डव जब इधर-उधर वनोंकी खाक छानते फिरते थे, तब उन्हीं दिनों अर्जुनने मनीपुरकी राजकन्या चित्रांगदासे विवाह कर लिया था। उसी नगरमें एक 'अलूपी' नामकी सुन्दरी कन्या थी। उससे भी अर्जुनका गन्धर्व विवाह हो गया था। पाण्डव विपत्तिमें फंसे हुए थे, प्रकट न हो जावें, इस भयसे वे एक स्थानपर न रहकर स्थान परिवर्तन कर लेते थे। इसी कारण गर्भवती चित्रांगदा तथा अलूपीको वहीं छोड़कर उन्हें फिर मिलनेका आश्वासन देकर पाण्डव अन्यत्र विहार कर गये। चित्रांगदाकी कोखसे ही वीर बभ्रुवाहनका जन्म हुआ था। अलूपीने निःसन्तान होनेके कारण बभ्रुवाहनका लालन-पालन स्वयं किया और पुत्रके समान उसकी देख-रेख की। चित्रांगदाके पिताके स्वर्गवास होने पर १५ वर्षकी अवस्थामें बभ्रुवाहन अपने नानाके राज्यका उत्तराधिकारी हुआ।

उधर पाण्डवोंने कौरवोंका नाश करके दिग्विजय करनेकी ठानी। गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन अनेक देशोंको विजय करते हुए 'मनीपुर' भी आये। पिताका आगमन सुनकर मारे हर्षके बभ्रुवाहनको रोमांच हो आया। वह अर्जुनका स्वागत करनेके लिए अनेक रत्न-जवाहरात लेकर उसके सामने पहुँचा। बभ्रुवाहनके साथ उसकी सौतेली माँ अलूपी भी थी। बभ्रुवाहनको देखते ही अर्जुनको क्रोध चढ़ आया, आँखोंमें खून उतर आया। वह दाँत पीसकर बोला—

"अरे मूर्ख ! जान बचानेके वास्ते चाहे जिसे बाप कहने लगा। तुझे शर्म नहीं आती। यदि तू अर्जुनका पुत्र होता, तो अर्जुनके सामने अर्जुन

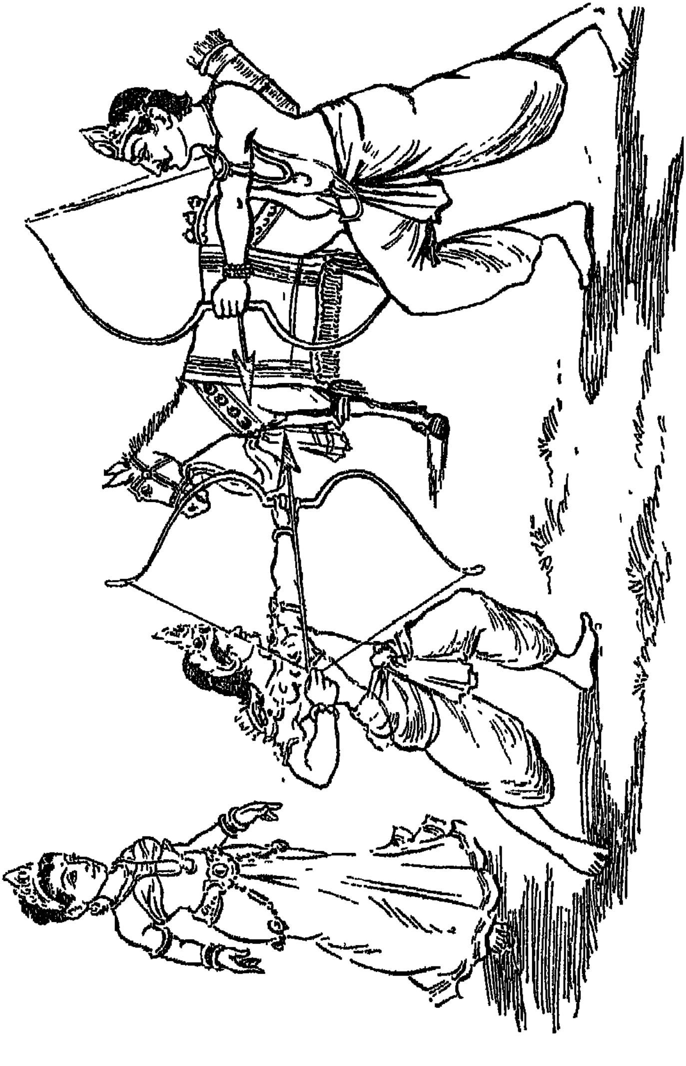
ही के समान सीना तानकर आता। यदि तेरा कहना सत्य भी मान लिया जाय कि तू वास्तवमें अर्जुनका पुत्र है तो क्या हुआ! आज अर्जुन तेरा बाप बनकर तो नहीं आया है, वह तो तेरा शत्रु बनकर आया है। हा! जब लोगोंको यह मालूम होगा कि अर्जुनका पुत्र शत्रुसे हार गया, तब लोग क्या कहेंगे? उस समय मुझे कितनी वेदना होगी? धिक्कार है तेरी माँको, जिसने तेरे जैसा कायर-पुत्र जना। ओह! मुझे क्या मालूम था कि चित्रांगदा नपुंसक पुत्र पैदा करेगी, वरना मैं क्यों संबंध करता? यदि तू अर्जुनका पुत्र होता तो अपने शत्रुके सामने दीनतापूर्वक नहीं आता। 'लव'-'कुश' रामसे कहने नहीं गये थे कि हम आपके पुत्र हैं। अपितु रणक्षेत्रमें रामको नीचा दिखाकर उन बालकोंने बतला दिया था कि हमारी जननी सीता है। यदि तू भी मेरे सामने धनुष ताने हुए शत्रुओंकी भाँति मेरा मानमर्दन करनेके लिए आता तो आज मेरी मारे आत्मगौरवके छाती फूल उठती। तू मुझे नीचा दिखाता, किन्तु वही मेरी विजय होती। संसार कहता अर्जुनका पुत्र अर्जुनसे भी बढ़कर निकला, किन्तु अब यह मेरी विजय होना भी पराजय है। लोग कहेंगे अर्जुन-पुत्र पामर है, कायर है, क्षत्रिय-कुल कलंकी है। हा! जब मैं ऐसे शब्द सुनूँगा तो मारे आत्म-ग्लानिके गड़ जाऊँगा। धिक्कार है उस चित्रांगदाको जिसने तेरे जैसा शिखण्डी पुत्र पैदा किया।"

अलूपी खड़ी हुई सब सुन रही थी। अर्जुनके यह वाणीके बाण उसके हृदयमें चुभ गये। वह चुटीली सर्पिणीके समान फुफकारकर बोली—"पुत्र बभ्रुवाहन! या तो पाण्डु-सुतका मान-मर्दन कर, इसकी शेखी खाकमें मिलादे, या मुझे और अपनी माँ चित्रांगदाको मार दे। क्षत्राणी मरना स्वीकार कर लेगी, किन्तु अपमान नहीं सह सकती। पाण्डु-सुतने यह अपशब्द तेरी माँ चित्रांगदाके लिए कहे हैं, किन्तु मैं भी तेरी माँ हूँ।

वह तो सिर्फ़ तेरी जन्मदात्री है, किन्तु मैंने लालन-पालन किया है, और तेरे ऊपर सब मातृ-अधिकार मेरा ही है। अतएव पाण्डु-सुतका यह सारा कटाक्ष मुझीको लक्ष्य करके हुआ है।"

कहते-कहते अलूपी क्रोधोन्मत्त हो गई। वह घायल सिंहिनीके समान गरजकर बोली—"पुत्र युद्धके लिए प्रस्तुत हो जाओ! पाण्डु-पुत्र तुमसे अधिक बलवान नहीं हो सकता। पाण्डु-सुत तुझे कायर कहता है, चित्रांगदाको धिक्कारता है, किन्तु वह वे दिन भूल गया, जब द्रौपदीकी साड़ी खींची गई। भरे-दर्बारमें उसे लात मारी गई थी। जिसे प्राणोंके भयसे नर्तक बनकर राजा विराटके यहाँ रहना पड़ा था, जिसके भाइयोंको रोटी बनाने, गाय चराने और घोड़ोंकी खिदमत करनी पड़ी थी। वही आज ज़रा-सी विजय होने पर अपने सामने किसीको नहीं समझता। मानो पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गई है। यदि मैं आज पाण्डु-सुतकी पत्नी न होती तो उसके ऐसे गर्वीले शब्दोंका उत्तर युद्धसे देती। मैं वह द्रौपदी नहीं हूँ, जो साड़ी खिच जाने पर भी चुपचाप रही, परन्तु मुझे मेरा पातिव्रतधर्म ऐसा करनेके लिए आज्ञा नहीं देता। अतएव पुत्र! तू पाण्डु-सुतको उसके गर्वीले वचनोंका समुचित उत्तर देकर बतलादे कि मैंने वास्तवमें वीर-क्षत्राणीका दुग्धपान किया है।"

ऐसे उत्तेजना भरे शब्दोंको सुनकर बभ्रुवाहनका रक्त खौल उठा, भवें तन गईं, कमरमें लटकी हुई तलवार झनझना उठी, दाँत किटकिटाकर तलवार निकाल ली और यह कहते हुए कि "मेरी माँका अपमान करनेवाला संसारमें जीवित नहीं रह सकता।" शेरकी तरह अर्जुनपर झपट पड़ा। अर्जुन पहले ही सावधान था। दोनोंका घमासान युद्ध होने लगा। अन्तमें अर्जुन बभ्रुवाहनके करारे वार न बचा सकनेके कारण मूर्छित होकर पृथ्वी-पर गिर पड़ा।



उपचार करनेके पश्चात् अर्जुन होशमें आया। उसने बभ्रुवाहनको प्यारसे गले लगा लिया और बोला—"वास्तवमें तू वीर है, वीरोंको वीर-पुत्रोंकी ही आवश्यकता होती है। फिर अलूपी और चित्रांगदाकी ओर देखकर अर्जुन मुसकराये।[1]

१९३९ ई०

[1] महाभारतके अनुसार लाला दीनानाथजीकी एक कविताके आधार पर।

# वीरसेनाचार्य्य

सन् १४७८ ईस्वीकी बात है, जब जैनोंपर काफ़ी सितम ढाये गये थे। कोल्हुओंमें पेलकर, तेलके गरम कढ़ाहोंमें औटाकर, जीवित जलाकर और दीवारोंमें चुनकर उन्हें स्वर्गधाम (?) पहुंचाया गया था! जो किसी प्रकार बच रहे, वे जैसे-तैसे जीवन व्यतीत कर रहे थे।

उन्हीं दिनों दक्षिण-अर्काट जिलेके जिंजी प्रदेशका वेंकटामयेट्टई राजा था। इसका जन्म कबरई नामकी नीच जातिमें हुआ था। उच्च कुलोत्पन्न कन्यावरण करके उच्चवंशी बननेकी लालसाने उसे वहशी बना दिया था। उसने जैनोंको बुलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की, कि वे अपने समाजकी किसी सुन्दरी कन्यासे उसका विवाह कर दें।

राजाके मुखसे उक्त प्रस्तावका सुनना था, कि जैन वज्रहते-से रह गये। यह माना कि "संसार असार है, जीवन क्षण-भंगुर है, राज्य-वैभव नश्वर एवं पापका मूल है" ऐसे ही कुछ विचारोंके चक्करमें पड़कर जन जन अपनी राज्य-सत्ता लुटा बैठे थे, प्राचीन गौरव खो बैठे थे, फिर भी वंशज तो नर-केसरियोंके थे। वनका सिंह अपनी जवानी, तेज और शौर्य खो देनेपर भी मूँछका बाल क्या उखाड़ने देगा? वह दलदलमें फँसे हाथीके समान तो अपमान सहन कर नहीं सकेगा? भले ही जैन अपना पूर्व वैभव तथा बल-विक्रम सब गँवा बैठे थे, परन्तु जैनधर्म-द्वेषी, नीच कुलोत्पन्न राजाको कन्या दे दें, यह कैसे हो सकता था? यह उस कन्या और कन्याके पिताका ही नहीं, वरन् समूचे जैनसंघके अपमान और उसकी आन-मानका प्रश्न था। यह अभिलाषा प्रकट करनेका साहस ही राजाको कैसे हुआ? यही क्या कम अपमान है। इस धृष्टताका तो उत्तर देना ही चाहिए, पर विचित्र ढंगसे, यही सोचकर जैनोंने कन्या विवाह देनेकी स्वीकृति दे दी।

नियत समय और नियत स्थानपर राजाकी बारात पहुँची, किन्तु वहाँ स्वागत करनेवाला कोई न था। विवाहकी चहल-पहल तो दरकिनार, वहाँ किसी मनुष्यका शब्द तक भी सुनाई न देता था। घबराकर मकान-का द्वार खोलकर जो देखा गया तो, वहाँ एक कुतिया बैठी हुई मिली, जिसके गलेमें बँधे हुए क़ाग़ज़पर लिखा था "राजन्! आपसे विवाहको कोई जैनबाला प्रस्तुत नहीं हुई, अतः हम क्षमा चाहते हैं। आप इस कुतियासे विवाह कर लीजिये और जैन-कन्याकी आशा छोड़ दीजिये। सिंहनी कभी शृगालको वरण करते हुए नहीं सुनी होगी।"

वाक्य क्या थे? जहरमें बुझे हुए तीर थे। आदेश हुआ राज्य भरके जैनोंको नष्ट कर दिया जाय। जो जैनधर्म परित्याग करें उन्हें छोड़कर बाक़ी सब परलोक भेज दिये जायें। राजाज्ञा थी, फ़ौरन् तामील की गई। जो जैनत्वको खोकर जीना नहीं चाहते थे, वे हँसते हुए मिट गये, कुछ बाह्यमें जैनधर्मका परिधान फेंककर छद्मवेशी बन गये, और कुछ सचमुच जैनधर्म छोड़ बैठे!

जैनधर्मके बाह्य आचार—जिन-दर्शन, रात्रि-भोजन-त्याग और छना हुआ जलपान—सब राज्य-द्वारा अपराध घोषित कर दिये गये। अपराधी-को मृत्यु-दण्ड देना निश्चित किया गया। परिणाम इसका यह हुआ कि धीरे-धीरे जनता जैनधर्मको भूलने लगी और अन्य धर्मके आश्रयमें जाने लगी।

इन्हीं दिनों दुर्भाग्यसे क्यों, सौभाग्यसे कहिए, एक गृहस्थ महाशय टिण्टीवनम्के निकट बेलूरमें एक तालाबके किनारे छिपे हुए जल छानकर पी रहे थे। राजाके सिपाहियोंने उन्हें देखा और जैन समझकर बन्दी कर लिया। पुत्र होनेकी खुशीमें राजाने उस समय प्राण-दण्ड न देकर भविष्यमें ऐसा न करनेकी केवल चेतावनी देकर ही उन्हें छोड़ दिया।

सिंहकी गोली खानेपर जो स्थिति होती है, वही उक्त गृहस्थ महाशयकी हुई। वे चुटीले साँपकी तरह क्रुद्ध हो उठे! "बच जानेसे तो मर जाना कहीं श्रेष्ठ था, क्या हम छद्मवेशी बने, इसी तरह धर्मका अपमान सहते हुए जीते रहेंगे"—इन्हीं विचारोंमें निमग्न होकर मारे-मारे फिरने लगे, वापिस घर न गये और श्रवणबेलगोलामें जाकर जिन-दीक्षा ग्रहण करके मुनि हो गये। उन्होंने अध्ययन करके जैन-धर्मका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। और फिर सारे दक्षिणमें जीवन-ज्योति जगा दी। सौ जैन रोजाना बनाकर आहार ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा ली। यह आज-कलके साधुओं-जैसी अटपटी और जैनसंघको छिन्न-भिन्न करनेवाली प्रतिज्ञा नहीं थी। यह जानपर खेल जानेवाली प्रतिज्ञा थी। मगर जो इरादेके मजबूत और बातके धनी होते हैं, वे मृत्युसे भी भिड़ जाते हैं, और सफलता उनके पाँव चूमा करती है। अतः निर्भय होकर उन्होंने धौंसेपर चोट जमाई और वे गाली, पत्थर, भयंकर यंत्रणाओं तथा मान-अपमानकी परवाह न करके कार्य-क्षेत्रमें उतर पड़े। हाथीकी तरह झूमते हुए जिधर भी निकल जाते थे, मृतकोंमें जीवन डाल देते थे। उनके सत्प्रयत्नसे बिखरी हुई शक्ति पुनः संचित हुई। जो जैन छद्मवेशी बने हुए थे, वे प्रत्यक्ष रूपमें वीर-प्रभुके झण्डेके नीचे संगठित हुए और जो जैन नहीं रहे थे, वे पुनः जैनधर्ममें दीक्षित किये गये। साथ ही बहुत-से अजैन जो जैनधर्मको अनादरकी दृष्टिसे देखते थे, जैनधर्ममें आस्था रखने लगे, और जैनी बननेमें अपना सौभाग्य समझने लगे। जिस दक्षिण प्रान्तमें जैनधर्म लुप्तप्राय हो चुका था, उसी दक्षिणमें फिरसे घर-घरमें णमोकार मन्त्रकी ध्वनि गूँजने लगी। आज भी दक्षिण प्रान्तमें जो जैन-धर्मका प्रभाव और अस्तित्व है, वह सब प्रायः उन्हीं कर्मवीरके साहसका परिणाम है। जहाँ-जहाँ उन्होंने अपने चरण-कमल रक्खे, वहाँ-वहाँका प्रत्येक अणु पूजनीय बन गया है।

इन्हीं प्रातःस्मरणीय श्रीवीरसेनाचार्यका समाधिमरण बैलूरमें हुआ। जैनधर्मके प्रसारमें इनको सहायता देनेवाला जिंजी प्रदेशका गंगप्पा ओड-इयर नामका एक गृहस्थ था। इसने जैनधर्मकी प्रभावना और प्रसारमें जो सहायता दी, उसके फलस्वरूप आज भी जब बिरादरीमें दावत होती है; तब सबसे पहले इसीके वंश वालोंको पान दिया जाता है, तथा टिंडीवनम् तालुकाके सीतामूरमें जब भट्टारकका चुनाव होता है, तब इस वंशवालेकी सम्मति मुख्य समझी जाती है। इसकी सन्तान अभी तक तायनूरमें वास करती है[1]।

फ़रवरी १९३८ ई०

---

[1]इस लेखमें उल्लिखित बातें कल्पित अथवा पौराणिक नहीं, किन्तु सब सत्य और विश्वस्त हैं तथा मद्रास-मैसूरके स्मारकोंमें बिखरी हुई पड़ी हैं। उन्हींपरसे यह निबंध संकलित किया गया है।

# कालकाचार्य्य

मगध देशके अन्तर्गत थारावास (धारावास) नगरके राजा वज्रसिंहकी पटरानी सुरसुन्दरीकी कोखसे कालककुमार और सरस्वतीका जन्म हुआ था। युवा होने पर सांसारिक ममता इन्हें अपनी ओर न खींच सकी, जैन-धर्मानुसार दीक्षित होकर कालककुमार साधु-वेशमें और सरस्वती आर्यिका-वेशमें लोक-हितके सन्देशको लेकर पृथक्-पृथक् गाँवों, देहातों, शहरों, वनों, पर्वतोंमें विचरने लगे। विचरते हुए कालककुमार उज्जैनीमें भी आये, अब यह जैनसंघके आचार्य पदपर प्रतिष्ठित थे। उस ओर ही विचरते हुए साध्वी सरस्वतीने कालकाचार्य्यका उज्जैन आगमन सुना तो वह भी कालकाचार्यसे धर्म-श्रवणके लिए उज्जैन आगई।

उज्जैनका राजा गर्दभिल्ल जो एक प्रजापीड़क, स्वार्थान्ध, कामपीड़ित, शासक था, सरस्वती साध्वीको मार्गमें देख, तप और संयमसे चमकते हुए उसके रूपपर मुग्ध हो गया, और राज-कर्मचारियों-द्वारा बलात् हरण करके उसे अन्तःपुरमें भिजवा दिया।

यह समाचार क्षण भरमें बिजलीकी तरह सारे जैन-संघमें फैल गया। उज्जैन-वासी दहाड़ मार कर रोने लगे। वह एक डेपुटेशन लेकर राजाके पास पहुँचे, रोये, गिड़गिड़ाये, पाँवों पड़े, पर राजा गर्दभिल्लने एक न सुनी। उल्टा डेपुटेशनमें गये हुये संघके इन प्रमुखोंको दुत्कारकर बाहर निकाल दिया। बेचारे भेड़ोंकी तरह नीची गर्दन किये हुए चले आये। कालकाचार्य्यने जैनसंघकी विफलता और अकर्मण्यताको सुना तो दंग रह गये।

यदि साध्वीका अपहरण करनेवालेको इनमें दण्ड देनेकी क्षमता न थी, सरस्वतीको वापिस लानेकी इनमें शक्ति न थी; तो ये सब वहीं मर क्यों न गये, यहाँतक खाली हाथ लौट आनेमें इन्हें लाज न आई।

यह सरस्वतीकी रक्षाका प्रश्न नहीं, यह तो राष्ट्रधर्म और समूचे मानव-समाजका अपमान था, फिर भी यह सब इस अपमानको ज़हरकी घूँटके समान पीकर भी जीवित बने रहे, वीर-पुत्र होनेपर भी कायरोंकी भाँति चले आये, इससे अधिक श्रीसंघका और क्या पतन होगा ?

कालकाचार्य्य यद्यपि एक साधु थे, चलते हुए भी कोई जीव न मर जाय, इस ख़यालसे चलते हुए मार्गमें चार हाथ ज़मीन देखकर चलते थे। उनकी दृष्टिमें शत्रु-मित्र, महल-श्मशान, मान-अपमान सब समान थे। वह दयासागर और क्षमाके भण्डार थे, किन्तु यह अत्याचार देखना उन्होंने मानव-समाजका अपमान और अपने लिए पाप समझा। । वह एक बार स्वयं गर्दभिल्लको समझानेके लिए उसके पास गये, किन्तु गर्दभिल्ल न माना।

कालकाचार्य्य दुर्द्धर तपश्चरण करके अपने क्षत्रियोचित शरीरको बिल्कुल बेकार कर चुके थे, न उनमें वह पहला-सा शौर्य था, न बल, केवल हड्डियोंकी माला बने हुए थे, फिर भी उनकी नसोंमें वीर-लहू प्रवाहित था मुखपर उनके तेज था, वह इस अत्याचारका बदला लेनेके लिए प्रस्तुत हो गये। घूमते हुए वे सिंधु नदीके तटपर बसे हुए पार्श्वकुल नामके देशमें जा पहुँचे, जहाँ साखी (शक) राजा राज्य करते थे। कालकाचार्य्यके कहनेसे शक राजा ससैन्य उज्जैनपर चढ़ आया और कालकाचार्य्यकी चतुरतासे गर्दभिल्लको परास्त कर दिया।

कालकाचार्य्यको गर्दभिल्लसे व्यक्तिगत बैर नहीं था, उन्हें उसके इस अत्याचारसे बैर था। शक राजा उसे मार डालना चाहते थे, किन्तु कालकाचार्य्यने प्रायश्चित्तस्वरूप उसको राज्यसे वंचित रखना ही यथेष्ट समझा। संकटावस्थामें पड़ी हुई सरस्वती साध्वीको कालकाचार्य्यने कारा-गृहसे मुक्त किया और फिर दोनों भाई-बहन साधुके उत्कृष्ट व्रत धारण करके लोक-हितके लिए विचरने लगे।

जनवरी १९३४ ई०

# महामेघवाहन खारवेल

**प्रथम राजवंश और महाभारत-युद्ध—**

महामेघवाहन खारवेलका जन्म ई० पू० १९७में चैत्रवंशके तृतीयवंशमें हुआ था। हिन्दूपुराणोंके अनुसार महाभारत-युद्धके समयसे कलिंगका राजवंश चला आता था। महाभारतके युद्धमें कौरवोंके निमंत्रण-पर कलिंगराज श्रुतायु (श्रुतायुध) अपने तीन वीरपुत्रों—भानुमान, केतुमान, और शुक्रदेवको साथ लेकर ६० हज़ार रथ और १० हज़ार हाथियों समेत ससैन्य वीर-गतिको प्राप्त हुआ था। भीष्मके आगे लड़नेवाले सप्तरथियोंमें कलिंग-राज अग्रणी था। द्रोणाचार्यके तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बचानेकी नीयतसे भीमने द्रोणाचार्यपर एक साथ सात बाण छोड़े। अत: कहीं द्रोणाचार्य घायल न हो जायँ; इस आशंकासे कलिंगराज श्रुतायुधने आगे बढ़के भीमके प्रहारको रोका, साथ ही अपने साथ युद्ध करनेको ललकारा। आख़िर कलिंग-राजकुमार केतुमानके रणकौशलके आगे भीमकी सेना न ठहर सकी और उसके पाँव उखड़ गये। थोड़े-से सैनिकोंके साथ लड़ते हुए भीमके रथके घोड़े शुक्रके बाणोंसे बिंधकर गिर पड़े तो भीम यमराजके समान गदा लेकर उसपर टूट पड़ा और शुक्रदेव (कलिंगराजकुमार) को यमलोक पहुँचा दिया। अपने पुत्रको काम आया देख कलिंगराज दून उत्साहसे भीमसे भिड़ गये, तब भीमने घबराकर गदा छोड़ तलवार हाथमें ली और भानुमानको धराशायी कर दिया। कलिंगराज दोनों पुत्रोंका मरण देख किञ्चित् भी विह्वल न हुए, अपितु अत्यन्त वेगसे बाणोंका प्रहार करके भीमको जमीन सुँघा दी, तब भीमके सहायक अशोकने भीमको सम्भाला और जैसे-तैसे दूसरा रथ मँगवाकर उसपर सवार कराया।

अन्तमें बचे हुए अपने एक पुत्रके साथ कलिंगराज वीर-गतिको प्राप्त हुए। राजाके मरनेपर भी कलिंग-सेना रणक्षेत्रमें डटी रही, और उसने अपनी अपूर्व वीरतासे भीमके छक्के छुड़ा दिये। यहाँ तक कि भीमकी रक्षार्थ धृष्टद्युम्न और सात्यकिको भी आना पड़ा। कौरवोंकी पराजयके साथ-साथ उनके हिमायती कलिंगोंकी पराजय भी अवश्यम्भावी थी। फिर भी कलिंगके इस रण-कौशल और साहसकी प्रशंसा मुक्त-कण्ठसे शत्रु-पक्षकी ओरसे सात्यकि-जैसे महारथीने की थी।

**द्वितीय राज-वंशका अशोकसे युद्ध—**

कहते हैं महाभारतसे नन्दराजत्वकाल ई० पू० ३२२ तक कलिंगमें ३२ राजा इस वंशके राज्य कर चुके थे। साम्राज्य-विस्तार करते हुए नंदवंशी राजा कलिंग जीतकर वहाँके राज-वंशकी पूजनीय, ऋषभनाथ ( जैनधर्मके प्रथम तीर्थंकर) की मूर्ति ले गया था और तभी से प्रथम एल राजवंशकी समाप्ति हुई, किन्तु अन्तके नन्दवंशी राजाओंको दुर्बल देख कलिंगमें फिर स्वाधीनताकी घोषणा कर दी गई। इस स्वाधीनताकी घोषणा करनेवाला कलिंगका यह द्वितीय एल राजवंश कहलाया। कलिंगके यह राजा एल (एर०, आर्य) कहलाते थे।

इसी द्वितीय एलवंशीय राजाके शासनकालमें अशोकने सिंहासन प्राप्त करनेके १३ वें वर्षके अनन्तर ई० पू० १५६में अपनी सारी शक्ति बटोर कर कलिंगपर आक्रमण कर दिया। कलिंग उस समय भी एक शक्तिशाली राज्य था, उसकी प्रबलता शायद उसके जंगी हाथियों और जहाजोंसे थी। कलिंगके वीर होनेका यही काफ़ी प्रमाण है कि वह नन्द-राजाओंसे पराधीन होनेपर भी स्वाधीन हो गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके पुत्र बिन्दुसारने समस्त भारतको विजित किया, किन्तु मार्गमें पड़ते

हुए भी कलिंग-देशको न छेड़ा। कलिंगको छेड़ना सोते सिंहको ललकारना था। अतः वह कतराकर भारतमें मौर्य-साम्राज्यका विस्तार करते रहे, किन्तु कलिंग-वासियोंकी यह स्वाधीनता, साम्राज्य-लोलुपी अशोकसे न देखी गई, और वह राज्यसिंहासनारूढ़ होनेपर १२ वर्षतक उसको विजित करनेकी उधेड़बुनमें लगा रहा, और अन्तमें महान् सामरिक सामग्री संकलित करके अपनी समस्त शक्तिके साथ कलिंग-वासियोंको जा ललकारा। कलिंग-वासियोंको युद्धके लिए ललकारना सरल था, किन्तु उनसे लोहा लेना ज़रा टेढ़ी खीर थी। कलिंगवासी, क्या राजा क्या प्रजा, सदासे स्वाधीनता-प्रिय थे। वे पराधीन होनेसे मरना श्रेष्ठ समझते थे। रणभेरी सुनते ही उन्मत्त हो उठे। कौन पामर है जो उनके जीते जी उनकी स्वर्गतुल्य जन्मभूमिपर पादप्रहार कर सकेगा, उनकी स्वाधीन क्रीड़ास्थलीपर विचर सकेगा? सारा कलिंग क्षणमात्रमें प्राणोंका तुच्छ मोह त्याग कर, इस युद्धमें जूझ मरा। इस महान् युद्धमें स्वाधीनता-प्रिय कलिंगवासी एक लाख बन्दी, डेढ़ लाख आहत और इससे भी कहीं अधिक वीरगतिको प्राप्त हुए। पर भाग्य इनके प्रतिकूल बह रहा था, सर्वस्व स्वतंत्रता-यज्ञमें आहुत कर दिया, किन्तु स्वतन्त्रताकी देवी इनसे प्रसन्न न हुई, वे युद्धमें जूझ मरे, किन्तु विजयी न हुए। पर कलिंग-राज स्वाभिमानी था, उसने आत्म-समर्पण अथवा आधीनता स्वीकार करनेके बजाय, कलिंग छोड़ जंगलोंमें रहना उचित समझा। विलासपूर्ण परतन्त्र जीवनसे उसने वनमें स्वतन्त्र रहना अधिक श्रेयस्कर समझा—

**जौ अधीन तौ छाँड़िये, स्वर्गहुँ विभव विलास।**
**जौ पै हम स्वाधीन तौ, भलो नरक कौ वास॥**

—वियोगीहरि

पराधीन देशसे स्मशान देश अच्छा, यही सोचकर कलिंग-राजवंश और उनके साथी जंगलोंमें जा रहे। मातृ-भूमि छूट जानेपर दिलोंपर क्या गुज़रती है, यह वेदना निर्वासित व्यक्तियोंके सिवाय और कौन अनुभव कर सकता है?

स्वाधीनता-प्रिय कलिंगवासी मातृ-भूमिसे जुदा तो हुए, परन्तु अपने सीनेपर पत्थर रखकर[1] वे अपना हृदय अपनी मातृ-भूमिमें ही छोड़ गये।

अब वे दक्षिण कौशलमें स्वतन्त्र रहकर अपनी जन्मभूमिके उद्धारकी युक्तियाँ सोचने लगे। लगन बड़ी चीज़ है। जिनके हृदय अपनी मातृ-भूमिको स्वतन्त्र करनेके लिए उमड़ रहे हों, वे वीर असफलताओंकी ओर दृष्टिपात नहीं करते। जो वीर हैं, जिन्हें अपने आत्म-बल और बाहुबलपर विश्वास है, उनके आज नहीं तो कल, नहीं तो परसों एक-न-एक दिन सफलता अवश्यमेव पाँव चूमेगी।

**जो बा-हिम्मत हैं उनका रहमते-हक़ साथ देती है।**
**क़दम ख़ुद आगे बढ़के मंज़िले-मक़सूद लेती है॥**

असफलताकी बड़ी-से-बड़ी चोट, उनके हृदयोंको आघात नहीं पहुँचा सकती। अपनी धुन और लगनके पक्के अपनी कर्मवीरतासे प्रतिकूल परिस्थितियोंको भी अपने अनुकूल बना लेते हैं। संसारकी निष्ठुरता भी उनके सामने फीकी पड़ जाती है।

इस युद्धमें अशोक विजयी तो अवश्य हुआ, किन्तु उसे हारसे भी अधिक मानसिक सन्ताप और आत्मग्लानि हुई। कलिंगवासियोंके आत्मोत्सर्गका कुछ ऐसा हृदयग्राही प्रभाव पड़ा कि साम्राज्यलोलुपी अशोक धर्मभीरु

---

[1] कलिंग-वासियों-जैसा ही अनुकरण उनके १८०० वर्ष बाद महाराणा प्रतापने किया था।

अशोक बन गया। उसने जीवनभर फिर युद्धोंको घृणित समझा, और सदैव कलिंगवासियोंकी आन-मानका सबसे अधिक ध्यान रक्खा। हमेशा अपने धर्म-लेखों-द्वारा कलिंगमें नियुक्त अपने प्रतिनिधियोंको वहाँके निवासियोंको सुख पहुँचानेका विशेष सन्देश देता रहा।

**तृतीय राजवंश और स्वतन्त्रताकी घोषणा—**

अशोककी मृत्युके पश्चात् शनैः शनैः मौर्य-साम्राज्य निर्बल होता चला गया और मौर्यवंशी शालिसूकके शासनकालमें उचित अवसर पाकर ई० स० पू० २२० में दक्षिण कौशलसे एलवंशीय चैत्र राजाने कलिंगको अपने हस्तगत करके फिर स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। चैत्रराजाने अबकी बार स्वाधीनताकी घोषणा की थी, इसीलिए उसके नामपर यह तृतीय वंश कहलाया। कलिंगके उक्त तीनों राजवंशीय एल कहलाते थे और महामेघवाहन इनकी उपाधि होती थी। यह तीनों वंश एक ही राजवंशसे सम्बन्धित थे या पृथक्-पृथक् यह अभी निश्चित नहीं हुआ है।

इसी तृतीय राजवंश या तीसरी पीढ़ीमें (ई०पू० १९७में) राजा खारवेलका जन्म हुआ। इसके सम्बन्धमें एक शिलालेख मिला है, जिसका सबसे प्रथम ज्ञान स्टर्लिंग साहबको सन् १८२५में हुआ। तबसे आजतक अनेक पुरातत्त्वविमर्ष-विचक्षण अपने अनुसन्धान-द्वारा अनेक ज्ञातव्य बातें प्रकाशित कर चुके हैं। इसके प्रसिद्ध अन्वेषक और विशेषज्ञ मि० के० पी० जायसवाल थे। जो अनवरत परिश्रमसे इसकी अनेक ज्ञातव्य बातोंको प्रकाशमें लाये हैं।

"कलिंगदेश (उड़ीसा) में खण्डगिरी—उदयगिरी नामक प्रसिद्ध दिगम्बर जैन-क्षेत्र, भुवनेश्वर स्टेशनसे तीन मीलपर है। यहाँ अनेक गुफायें, शिलालेख और दीवारसे लगी हुई मूर्तियाँ हैं। यहीं हाथीगुफामें महा-

मेघवाहन राजा खारवेलका २१०० वर्षका प्राचीन उक्त प्रसिद्ध शिला-लेख है। जो प्राय: पाँच गज़ लम्बा और दो गज़ चौड़ा है। इसमें १७ पंक्तियाँ हैं, प्रत्येक पंक्तिमें ९० से १००तक अक्षर हैं। इसकी भाषा कुछ स्थलोंको छोड़कर विशेषत: धर्मग्रन्थोंमें व्यवहृत पाली है। इसकी लिपि ई० पू० १६० वर्षकी उत्तरीय ब्राह्मी है। अनेक अक्षर नष्टप्राय हो चुके हैं, तो भी अधिकांश भाग भलीभाँति पढ़ा जाता है?"[1] भारतीय इतिहासकी सामग्रीके लिए यह अत्यन्त क़ीमती महत्त्वपूर्ण शिलालेख है। अशोकके धर्मलेखोंके बाद यही वह दूसरा शिलालेख है, जिसे पुरातत्त्वज्ञ इतिहासके रीढ़की हड्डी समझते हैं।

**खारवेलका राज्याभिषेक**

ई० पू० १८२में १५ वर्षकी अवस्थामें अनेक विद्याओंमें निपुणता प्राप्त करके खारवेल युवराज-पदपर प्रतिष्ठित हुआ और ई० पू० १७३ में २४ वर्षकी आयुमें कलिंगके राज्य-सिंहासनपर अभिषिक्त हुआ। कलिंगकी राजधानी उस समय तोषली (वर्तमान धोली) थी, और कलिंगकी जनसंख्या ३५ लाख थी।

राज्यासन प्राप्त करते ही खारवेलने प्रथम वर्षमें अपनी राजधानीको शत्रुओंसे सुरक्षित रखनेके लिए प्राचीर आदि बनवाकर सुदृढ़ किया और इस कार्यसे निवृत्त होते ही राज्य-प्राप्तिके द्वितीय वर्षमें दिग्विजयके लिए प्रस्थान कर दिया।

**मूषिक-आन्ध्र विजय**

दक्षिण कौशलके पश्चिममें मूषिक नामक एक देश कलिंगसे लगा हुआ उत्तर पश्चिमकी ओर (वर्तमान कालाहाण्डी, सम्बल आदि) फैला हुआ

---

[1] अनेकान्त वर्ष १ किरण ५ पृ० २८५।

था। मूषिकवासी कलिंगके अधीनस्थ काश्यप क्षत्रियोंको निरन्तर सताते रहते थे। अतः काश्यपोंके इस संकटको दूर करनेके लिए खारवेलने आन्ध्र-प्रान्तकी ओरसे मूषिकोंपर आक्रमण किया, किन्तु आन्ध्र-नरेश सातकर्णीने खारवेलको अपने राज्यमें-से गुजरने देनेमें विरोध किया, अतः प्रथम उसीसे युद्ध करके उसे परास्त किया और फिर मूषिक देशपर आक्रमण करके उसे ई० पू० १७१ में कलिंगमें सम्मिलित कर लिया।

**भोजक, रठिक-विजय**

राज्यके चौथे वर्षमें खारवेलने फिर पश्चिमकी ओर चढ़ाई की। भोजक और राष्ट्रिकोंने खारवेलके विरुद्ध सातकर्णीकी सहायता की थी। इसीलिए उनको जीतनेके पश्चात् इनकी भी खबर ली। यह दोनों राज्य गण-तन्त्र राज्य थे। इन दोनों गण-राज्योंने युद्धमें पराजित होनेपर अपने मुकुट खारवेलके चरणोंमें झुकाकर अधीनता स्वीकार की। यह खार-वेलकी दिग्विजयका वास्तवमें प्रारम्भ था।

**मगध-विजय**

राज्य-प्राप्तिके छठे वर्ष उसने राजसूय यज्ञ किया और सातवें वर्ष विवाह किया और आठवें वर्ष ई० पू० १६५में मगधकी ओर विजय-यात्रा करने निकला। अर्थात् दक्षिण और पश्चिममें साम्राज्य स्थापित कर लेनेपर अब वह उत्तर भारतको विजित करने चला। यह विजय-यात्रा, यात्रियोंके समान सैर नहीं थी। भारतके सबसे प्रबल सम्राट् पुष्यमित्रसे लोहा लेना था। यह पुष्यमित्र मौर्य-साम्राज्यका अन्त करके स्वयं सम्राट् बना था। सिकन्दर भी जिन प्रदेशोंको विजित न कर सका था, वही यवनराज दिमेत्रने विजय किये थे। दिमेत्र भारतका सार्वभौम सम्राट् बनना चाहता था, ऐसे बलशाली योद्धाको शिकस्त देकर पुष्यमित्र समूचे भारतमें महान् शक्ति-शाली सम्राट् गिना जाने लगा था। उसके स्वेच्छाचारको रोकनेमें कोई

समर्थ नहीं था। न मालूम ऐसे बलशाली सम्राट्से युद्ध करनेके लिए कलिंग-राज खारवेल क्या खाकर चला था। मगध-नरेश पुष्यमित्र खारवेलका आक्रमण सुन मथुराको चला गया, और वहाँ खारवेलके धावेकी प्रतीक्षामें रहा। पुष्यमित्रके मथुरा चले जानेपर खारवेलने अपना मनसूबा स्थगित कर दिया और कलिंगको चला गया।

नवें वर्ष कलिंगमें उसने महाविजय प्रासाद बनवाया। राज्य-प्राप्तिके दसवें वर्षमें उसने दण्ड, सन्धि और साम हाथमें लेकर फिर विजयके लिए प्रस्थान किया, जिनपर चढ़ाई की, उनके मणि-रत्न प्राप्त किये। ग्यारहवें वर्षमें आवराजाकी बसाई हुई पिथुंड नामकी मण्डी गधोंके हलसे जुतवा डाली और एकसौ तेरह बरस पुराने तामिल-देश-संघात (कई राष्ट्रोंके गुट्ट) को तोड़ डाला। जो तामिल-साम्राज्य मौर्य-राजाओंके अधीन होनेसे बचा रहा, उसे खारवेलने अपने अधीनस्थ कर लिया। बारहवें वर्ष उत्तरापथके राजाओंको त्रस्त किया और उसके बाद उसी वर्ष वह मगधके निवासियोंमें भय उत्पन्न करता हुआ अपनी सेनाओंको गंगा पार ले गया और भारत-सम्राट् कहलानेवाले पुष्यमित्रको परास्तकर उसे अपने पैरोंमें गिराया तथा राजा नन्द-द्वारा ले जाई गई राजवंशके इष्टदेवकी ऋषभनाथकी मूर्तिको पुनः हस्तगत करके कलिंगमें स्थापित किया। मगध-राजा नन्दवर्द्धन और अशोकने कलिंग जीता था, तथा पुष्यमित्रने जैनों और बौद्धोंको दुःख पहुँचाया था, अतः खारवेलने मगध-विजय करके उक्त अपमानोंका प्रतिशोध ले लिया।

खारवेल-इतिहासके विशेष अन्वेषक जायसवाल महोदय लिखते हैं कि:—"इस महाविजयके बाद जब कि शुंग, सातवाहन और उत्तरापथके यवन सब दब गये थे, खारवेलने जो राजसूय यज्ञ पहिले ही कर चुके थे, एक नये प्रकारका पूर्त ठाना, उसे जैनधर्मका महाधर्मानुष्ठान कहना

चाहिए। उन्होंने भारतवर्ष भरके जैन-यतियों, जैन-तपस्वियों, जैन-ऋषियों और पण्डितोंको बुलाकर एक धर्म-सम्मेलन किया। इसमें उन्होंने जैन-आगमको विभक्त करा करके पुनरुपादित कराया। ये अंग मौर्य-कालमें कलिंग देश तथा और देशोंमें लुप्त हो गये थे। अंग सप्तिक और तुरीय अर्थात् ११अंग प्राकृतमें, जिसमें ६४ अक्षरकी वर्णमाला मानी जाती थी, सम्मेलनमें संकलित किये गये। खारवेलको 'महाविजयी' पदवीके साथ 'खेमराजा' 'भिक्षुराजा' 'धर्मराजा' की पदवी अखिल भारतवर्षीय जैन-संघने दी। क्योंकि शिलालेखमें, सबसे बड़ा और अन्तिम चरम कार्य यही माना गया है और जैनसंघयन तथा अंगसप्तिक तुरीय-संपादनके बाद ये पदवियाँ जैन-लेखकने खारवेलके नामके संग जोड़ी हैं। शिलालेख लिखनेवाला भी जैन था, यह लेखके श्रीगणेश, 'नमो अरहतानं, नमोसव-सिधानं' से साबित है.......खारवेलने कुमारी पर्वतपर—जहाँ पहले महावीर स्वामी या कोई दूसरे जिन उपदेश दे चुके थे, क्योंकि उस पर्वतको सुप्रवृत्त विजयचक्र कहा है—स्वयं कुछ दिन तपस्या, व्रत, उपासक रूपसे किये और लिखा है कि—जीव-देहका भेद उन्होंने समझा। खारवेलके पूर्व पुरुषका नाम महामेघवाहन और वंशका नाम एलचेदिवंश था। इनकी दो रानियोंका नाम लेखमें है। एक बजिर घरवाली थी।

बजिर घरवाली अब वैरागगढ़ (मध्यप्रदेश) कहा जाता है और दूसरी सिंहपथ या सिंहप्रस्थकी सिंधुड़ा नामक थी। जिनके नामपर गिरिगुहा-प्रासाद, जो हाथीगुफाके पास है, उन्होंने बनवाया। इसे अब रानीगौर कहते हैं"[1]

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक ३।

खारवेलका विवाह—

खारवेलकी इसी दूसरी रानीने अपने पतिकी अमरकृतिको जीवित रखनेके लिए हाथीगुफामें उक्त शिलालेख अंकित करवाया था, किंतु उससे खारवेलकी दो रानियाँ एक वजिर घरवाली और द्वितीय सिंहप्रस्थकी सिंधुड़ा नामक पटरानी थी; इससे अधिक वृत्तान्त नहीं मिलता। खारवेलके विवाह-सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेकी प्यास बनी ही रहती है। उड़ीसाके ख्यातिनामा विद्वान् पं० नीलकण्ठदास एम० ए० ने खारवेलकी पटरानी सिंहप्रस्थ राजकुमारीके विवाहका उड़ियामें एक काव्य लिखा है, आपने उसमें सिंधुड़ाके स्थानपर उसका धूसी नाम लिखा है। उसी उड़िया काव्यका संक्षिप्त सारांश 'प्राचीन कलिंग' नामक हिंदी पुस्तकके आधारपर यहाँ दिया जाता है।

खारवेल पाण्ड्य देशको विजित करते हुए, जावा और वाली द्वीपकी ओर निकल गये। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि फ़ारस देशमें जानेवाले कलिंगके व्यापारी सिन्धुनदीके किनारेसे पश्चिमकी ओर निर्विघ्न और सुगमता-पूर्वक व्यापार नहीं कर सकते। उन्हें कर दण्ड बहुत देना पड़ता है और स्वाभिमान भी उनका अक्षुण्ण नहीं रहने पाता है। कलिंग-व्यापारियोंका अपमान, कलिंग-राष्ट्रका अपमान था, स्वदेशाभिमानी कलिंग-नरेश भला इस अपमानको सुनकर कैसे चुप बैठ सकता था। दूसरे उसे यह भी विदित था कि कलिंग कितना ही आज शक्तिशाली और समृद्धिशाली है, किन्तु उसके व्यापारमें रुकावटें पड़ने लगेंगी तो, वह अवश्य एक-न-एक दिन दीन-हीन राष्ट्र बन जायगा "व्यापारे वसते लक्ष्मी"—यह ध्यान आते ही कलिंगके प्रवासी व्यापारियोंके दुःख-निवारणार्थ वह सिन्धुदेशकी ओर ससैन्य चल पड़ा।

विजिर राज्य, (अफगानिस्तानका पूर्व प्रदेश) सिन्धुके पश्चिम तक फैला हुआ था और सिन्धु देशमें एक पाताल (पटल) नगर था। उसके पश्चिममें द्रविड़ जातिके किसान रहते थे, उनका भी एक राजा था। इसी कृषक राजासे विजिरके राजाकी मित्रता थी। इस विजिर राजाकी पुत्रीका नाम धूसी था। दमेत्रियके कपट पूर्वक विजिर हस्तगत किये जाने-पर विजिर राजा और उसका पुत्र तो अपने किसी अन्य मित्र राजाके आ-श्रयमें चले गये और धूसी राजकुमारीको युवा होनेके कारण अपने मित्र कृषक सरदारके यहाँ छोड़ गये जो राजकुमारीका पुत्रीके समान लालन-पालन करने लगा।

खारवेलने ससैन्य सिन्धुनदीके मुहानेपर स्थित पाताल नगरमें डेरे डाले, और कृषक देशके उस वृद्ध सरदारको भी अपनी ओरसे लड़नेके लिए निमन्त्रण दिया। राजकुमारी धूसीने एक रोज़ खारवेलको देख लिया। चार आँख होते ही वह इसके वीर-वेशपर मुग्ध हो गई। कृषक सरदार खारवेलको अपनी सेना देनेका वचन दे चुका था, किन्तु उचित सेनानायक न होनेके कारण चिन्तित था और स्वयं वृद्ध होनेके कारण सेना-संचालन योग्य नहीं था। राजकुमारी धूसी अपने धर्मपिताके संकटको समझ गई। वह युद्ध-विद्यामें काफ़ी निपुण थी, अतः ज़िद करके यह भार उसने अपने ऊपर ले लिया, और पुरुष वेशमें अपनी छोटी-सी सेना लेकर खारवेलके साथ जा मिली।

युद्धके समय यवन-नरेश दमेत्रियने खारवेलके साथ कपट-सन्धिका जाल रचा, और विजिर राजाके साथ विजिरमें आकर सन्धि करनेके लिए खारवेलको राज़ी कर लिया। विजिर राजकुमारी दमेत्रियके इस जालसे शंकित थी। अतः वह विजिरमें न जाकर अपने थोड़े-से सैनिकोंके साथ विजिरके बाहर चौकन्नी होकर अवसरकी प्रतीक्षा करने लगी।

दमेत्रियने खारवेलको असावधान समझकर रातके समय घेर लिया, खारवेलकी सेना अभी सावधान होने भी नहीं पाई थी कि धूसी अपने सैनिकोंको लेकर दमेत्रियपर पीछेसे बाजकी तरह झपट पड़ी। दमेत्रिय इस आकस्मिक आक्रमणसे घबरा-सा गया, इधर खारवेल भी अपनी सेनाको ललकारकर मैदानेजंगमें आ डटा। दुतर्फ़ी मारसे दमेत्रियके पाँव उखड़ गये, और उसे परास्त होकर विजिर छोड़ना पड़ा, किन्तु खारवेल इस अचानक धावेके कारण सख्त घायल होनेसे घोड़ेसे गिरना ही चाहता था, कि धूसीने उसको तुरन्त सम्भाल लिया और शिविरमें लाकर उसकी अत्यन्त सावधानतापूर्वक परिचर्य्या करके स्वस्थ कर लिया। इस जीतका सारा श्रेय पुरुषवेशधारी धूसीको प्राप्त हुआ। खारवेलने उससे इच्छित वस्तु माँगनेका अनुरोध किया, तब राजकुमारीने खारवेलको पतिके रूपमें वरण करनेकी अभिलाषा प्रकट कर दी। खारवेलके यह पूछनेपर कि 'तुमने इतनी-सी बातके लिए यह पथ क्यों स्वीकार किया?' तब राजकुमारी धूसीने लजाते हुए उत्तर दिया, 'वीरोंके पास वीर-वेशमें ही आना उपयुक्त था।' विजिर जीता हुआ प्रदेश उसके वास्तविक स्वामी, राजकुमारी धूसीके पिताको दे दिया, और खारवेल धूसीको पटरानी बनाकर कलिंग चला आया।

खारवेलका द्वितीय विवाह किस प्रकार हुआ, यद्यपि इसका, कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु उड़ीसाकी एक देवीने मुझे निम्न अनुश्रुति सुनाई थी—एक राजकन्याने प्रतिज्ञा की थी, कि जो मुझे युद्धमें जीत सकेगा, वही मेरा पति होगा। इस कन्याको वरण करनेके लिए स्वयंवरमें अनेक योद्धा आये, किन्तु सबने मुँहकी खायी। अन्तमें खारवेलने इसे युद्धमें परास्त करके रथमें बलात् बैठा लिया। तब प्रसन्नतापूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध राजकन्याने खारवेलको वरमाला पहनाई। सिंहनीको सिंह ही वरण कर सकता है, अन्य नहीं।

### खारवेलका शासन और व्यक्तित्व

भारतसे यवनोंको पूरी तरह खदेड़नेका श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्यके बाद महामेघवाहन खारवेलको ही प्राप्त हुआ। वह अपने तीनों प्रतिद्वन्द्वियों और भारतके अन्य छोटें-बड़े शासकोंको विजय करके भारतका चक्रवर्ती बन बैठा। चक्रवर्त्ती खारवेल, केवल साम्राज्य-अभिलाषी नहीं था। वरन् वह महान् सम्राट् देश, समाज और धर्मकी उन्नतिमें अत्यन्त प्रगतिशील था। यद्यपि वह जैनकुलोत्पन्न एक धर्मिष्ठ राजा था। उसे जैनधर्मानुसार जीवन व्यतीत करनेके कारण "भिक्षुराजा" की पदवी प्राप्त हुई थी। वह जैनधर्मनिष्ठ एक श्रद्धालु जैन था, किन्तु वह अन्य धर्मद्वेषी नहीं था। उसका हृदय विशाल था, वह अपने धार्मिक विश्वासानुसार आचरण करते हुए, सभी धर्मोंको आदरणीय दृष्टिसे देखता था। जहाँ उसने जैनधर्मके उत्थानके लिए एक धर्मानुष्ठान किया, वहाँ उससे पूर्व राजसूययज्ञ करके सब धर्मों और राष्ट्रोंमें एकताका सूत्रपात किया। प्रजापर लगे हुए समस्त कर क्षमा कर दिये और पौर(म्यूनिसपलकमेटी) जनपद (डिस्ट्रिक्टबोर्ड) नामकी संस्थाओंको अनेक अधिकार दिये। कृषि तथा जलकी सुविधाके लिए बहुत-से तालाब खुदवाये, तथा स्थान-स्थानपर सार्वजनिक मनोरंजनके लिए उद्यान बनवाये, संगीत और वाद्यका प्रबन्ध करवाया। वह स्वयं भी गान्धर्व-विद्यामें पारंगत था। ब्राह्मणोंको विपुल धन-दान दिया। हाथीगुफाके शिलालेखसे प्रकट होता है कि खारवेलके शासन-कालमें कलिंग-प्रजा अत्यन्त सुखी थी। खारवेलके साम्राज्यमें, सुख, सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्यकी प्रचुर सामग्री उपस्थित थी। सम्पत्तिके साथ-साथ उसके राज्यमें धार्मिक स्वतन्त्रता होनेके कारण चार चाँद लग गये थे। उस समय कलिंगकी सीमा, उत्तरमें गंगा नदी और बिहार प्रदेश, पश्चिममें बरार गौंडवाना राज्य, महाराष्ट्रदेश और

दक्षिणमें पाण्ड्य राज्यतक थी। भारतके छोटे-बड़े समस्त राजा, खारवेलको चक्रवर्ती स्वीकार करके सम्मान प्रदर्शित करते थे।

शिलालेख खारवेलके शासनके तेरहवें वर्षपर समाप्त हो जाता है। उस समय खारवेलकी अवस्था ३७ वर्षकी थी। उसके बाद फिर उसने क्या किया, इसका स्पष्टीकरण नहीं होता ; वह चक्रवर्त्तित्व प्राप्त करनेके बाद, जैनधर्मानुसार जीवन व्यतीत करने लगा था। मंचपुरीके शिलालेखसे अनुमान लगाया जाता है कि सम्भवतः कम-से-कम ६७ वर्षकी आयुतक खारवेलने अवश्य राज्य किया होगा और इस प्रकार ई० पू० १३० वर्षतक इस महान् सम्राट्का अवश्य शासन रहा होगा।

जनवरी १९३४ ई०

# दीवानोंकी टेक

दीवानी दुनिया जिन्हें दीवाना कहती है, ऐसे ही दीवाने भारतके भिन्न-भिन्न पागलखानोंमें रह रहे थे। भारत-विभाजनके बाद पुलिस-फ़ौजके समान इन दीवानोंके भी बटवारेका निर्णय हुआ। यानी हिन्दू दीवाने पाकिस्तानसे भारत और मुसलिम दीवाने भारतसे पाकिस्तान परिवर्तित किये जानेका निश्चय हुआ।

बटवारेकी सूचना लाहौरके पागलखानें पहुँची तो सुनते ही एक दीवाना पेड़पर चढ़कर 'अखण्ड भारत ज़िन्दाबाद'के नारे लगाने लगा। पुलिसने जब उसे उतरनेको ललकारा तो वह बा-आवाज़ बुलन्द बोला—

"अब यह ज़मीन हम लोगोंके रहने योग्य नहीं रही है। हमारी ग़ैरत इजाज़त नहीं देती कि अब हम ऐसी ज़मीनपर पाँव रखें जो इन्सानके ख़ूनकी प्यासी हो गई है। जो मुल्क हमेशासे हिन्दुस्तान कहलाता आ रहा है, वह रातों-रात पाकिस्तान कैसे बन गया......?"

पुलिस २-३ घण्टेतक उसे उतरनेके लिए बाध्य करती रही, परन्तु वह उतरनेके बजाय उपर्युक्त ढंगके वाक्य बोलता हुआ पेड़की इस डालसे उस डालपर कूदता-फाँदता उत्तरोत्तर पेड़की फुनगीपर चढ़ता गया तो पुलिसके २-३ सिपाही बाध्य होकर उसे उतारनेके लिए पेड़पर चढ़ने लगे। पुलिसको पेड़पर चढ़ते देख उसने तुरन्त अपनी धोती खोलकर, उसका एक सिरा पेड़से बाँधा और दूसरे सिरेका फन्दा बनाकर गलेमें डालकर पेड़से झूल गया। जब पुलिस उसके पास पहुँची तो उसके प्राण-पखेरू हिन्दुस्तान-पाकिस्तानके बन्धनसे मुक्त हो चुके थे।

× × ×

दीवानोंसे भरी हुई लारियाँ जब कथित भारत और पाकिस्तानकी

सीमाओंपर परिवर्त्तित करनेके लिए खड़ी हुई तो भारतकी लारीमें बैठे हुए दीवानोंमें-से एक इलाहाबादी दीवानेको सिपाहियोंकी बातचीतसे यह आभास हो गया कि उसका इलाहाबाद भारतमें ही रख लिया है, पाकिस्तान नहीं भेजा गया है। जब दीवाने पकड़-पकड़कर इधर-उधरकी लारियोंमें ठूँसे जाने लगे तो उसने लारीसे उतरनेसे इनकार कर दिया। ज़ोर-ज़बर्दस्ती करनेपर बोला—"आप मेरी जान भले ही निकाल दें, मगर मैं अपने वतनसे हरगिज़ पाकिस्तान-वाकिस्तान नहीं जाऊँगा। मैं सिर्फ़ हिन्दुस्तानी हूँ। यहीं पैदा हुआ हूँ, यहीं रहूँगा। अगर आप मुझे यहाँ रहने न देंगे तो मरनेसे तो न रोक सकेंगे? मुझे वतनमें रहनेको न सही मरनेको तो दो गज़ ज़मीन मिलेगी।"

जब उसे बलात् घसीटकर पाकिस्तानकी लारीकी तरफ़ ले जाने लगे तो उसने 'हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद' कहकर कुछ ऐसी चीख मारी कि सिपाही सहमकर दूर हट गये। क्षणभर बाद पुलिसने देखा तो उसकी रूह मरहूम 'जिन्हा' को मुबारकबाद देनेके लिए जन्नतको परवाज़ कर चुकी थी। केवल उसका शरीर उस गलियारेमें पड़ा हुआ था, जहाँसे हिन्दुस्तान-पाकिस्तानकी सीमाएँ प्रारम्भ होती थीं।[1]

१५ जून १९५६ ई०

[1] मरहूम सआदत हुसैन मिण्टोकी एक कहानीका संक्षिप्त भाव।

# शहीद बकरी

हरे-भरे पहाड़ पर बकरियाँ चरने जातीं तो दूसरे-तीसरे रोज एक-न-एक बकरी कम हो जाती। भेड़ियेकी इस धूर्त्ततासे तंग आकर चरवाहेने वहाँ बकरियाँ चराना बन्द कर दिया और बकरियोंने भी इस नागहानि मौतसे बचनेके लिए बाड़ेमें क़ैद रहकर जुगाली करते रहना ही श्रेष्ठ समझा। लेकिन न जाने क्यों एक युवा नई बकरीको यह बन्धन पसन्द नहीं आया। "अत्याचारीसे यूँ कबतक प्राणोंकी रक्षा की जा सकेगी? वह पहाड़से उतरकर किसी रोज बाड़ेमें भी तो कूद सकता है! शिकारीके भयसे मूर्ख शुतुरमुर्ग रेतेमें गर्दन छुपा लेता है। तब क्या शिकारी उसे बख्श देता है?" इन्हीं विचारोंसे ओत-प्रोत वह हसरतभरी नजरोंसे पर्वतकी ओर देखती रहती। साथिनोंने उसे आँखों-आँखोंमें समझानेका प्रयत्न किया कि "वह ऐसे मूर्खतापूर्ण विचारोंको मनमें न लाये। भोग्य सदैवसे भोगनेके लिए ही उत्पन्न होते रहे हैं। भेड़ियेके मुँह हमारा खून लग चुका है, वह अपनी आदतसे कभी बाज नहीं आयगा।"

लेकिन वह नवीन युवा बकरी तो भेड़ियेके मुँहमें लगे खूनको ही देखना चाहती थी। वह किस तरह झपटता है, यही करतब देखनेकी लालसा उसकी बलवती होती गई। आखिर एक रोज मौक़ा पाकर बाड़ेसे वह निकल भागी और पर्वतपर चढ़कर स्वच्छन्द विचरती, कूदती, फलाँगती दिनभर पहाड़पर चरती रही। मनमानी कुलेलें करती रही। भेड़ियेको देखनेकी उत्सुकता भी बनी रही, परन्तु उसके दर्शन न हुए। झुरपुटा होनेपर लाचार जब वह नीचे उतरनेको बाध्य हुई तो रास्तेमें दबे पाँव भेड़िया आते हुए दिखाई दिया। उसकी रक्तरंजित आँखें, लपलपाती जीभ और आक्रमणकारी चालसे वह सब कुछ समझ गई।

भेड़िया मुसकराकर बोला—"तुम बहुत सुन्दर और प्यारी मालूम होती हो। मुझे तुम्हारी-जैसी साथिनकी आवश्यकता थी, मैं कई रोज़से अकेलापन महसूस कर रहा था। आओ तनिक साथ-साथ पर्वतराजकी सैर करें।"

बकरीको भेड़ियेकी बकवास सुननेका अवसर न था। उसने तनिक पीछे हटकर इतने ज़ोरसे टक्कर मारी कि असावधान भेड़िया सम्भल न सका। यदि बीचका भारी पत्थर उसे सहारा न देता तो औंधे मुँह नीचे ग़ारमें गिर गया होता।

भेड़ियेकी जिन्दगीमें यह पहला अवसर था। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। टक्कर खाकर अभी वह सम्भल भी न पाया था कि बकरीके पैने सींग उसके सीनेमें इस ज़ोरसे लगे कि वह चीख उठा। क्षत-विक्षत सीनेसे लहूकी बहती धार देख भेड़ियेके पाँव उखड़ गये। मगर एक निरीह बकरीके आगे भाग खड़ा होना उसे कुछ जँचा नहीं। वह भी साहस बटोर-कर पूरे वेगसे झपटा। बकरी तो पहलेसे ही सावधान थी, वह तरह देकर एक ओरको हट गई और भेड़ियेका सर दरख़्तसे टकराकर लहू-लुहान हो गया।

लहूको देखकर अब उसके लहूमें भी उबाल आ गया। वह जी जानसे बकरीके ऊपर टूट पड़ा। अकेली बकरी उसका कबतक मुक़ाबिला करती? वह उसके दाँव-पेच देखनेकी लालसा और अपने अरमान पूरे कर चुकी थी। साथिनोंकी अकर्मण्यतापर तरस खाती हुई बेचारी ढेर हो गई।

पेड़पर बैठे हुए तोतेने मुसकराकर मैनासे पूछा—

"भेड़ियेसे भिड़कर भला बकरीको क्या मिला?"

मैनाने सगर्व उत्तर दिया—"वही जो अत्याचारीका सामना करनेपर पीड़ितोंको मिलता है। बकरी मर ज़रूर गई है, परन्तु भेड़ियेको घायल

करके मरी है। वह भी अब दूसरोंपर अत्याचार करनेको जीवित नहीं रह सकेगा। सीने और मस्तकके घाव उसे सड़-सड़कर मरनेको बाध्य करेंगे। काश, उसकी अन्य साथिनोंने उसकी भावनाको समझा होता। छिपनेके बजाय एक साथ वार किया होता तो, आज बाड़ेमें क़ैदी-जीवन व्यतीत करनेके बजाय पहाड़पर निःशंक और स्वच्छन्द विचरती होतीं ?"

लोता अपना-सा मुँह लेकर चुपचाप शहीद बकरीकी ओर देखने लगा।[1]

१६ जून १९५५ ई०

---

[1]डाक्टर जाकिरहुसेन साहबकी एक कहानीसे प्रभावित होकर, जो कि सम्भवतः १९४४ के लगभग किसी पत्रिकामें पढ़ी थी।

# मित्रका विश्वास

उर्दूके प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और नज़्म-आन्दोलनके प्रवर्तक शम्स-उल-उलमा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' वृद्धावस्थामें मस्तिष्कका सन्तुलन खो बैठे थे। मस्तिष्क-जैसा कोमल-अंग सन्तुलन न खोता तो और उपाय भी क्या था? इतनी परेशानियों और मुसीबतोंके आगे तो वज्र भी विचलित हो उठता।

१८५७ के विप्लवमें उनके पिता फाँसी चढ़ा दिये गये। स्वयं आज़ाद भरा घर छोड़कर जान बचाकर भागनेको विवश हुए। इधर-उधर दर-दरकी ठोकरें खाते हुए, समूचे परिवारको ढोते हुए किसी तरह लाहौर पहुँचे। वहाँ कॉलिजमें प्रोफेसर नियुक्त हो गये। अध्यापनके अतिरिक्त शेष समय साहित्य-सृजन करते रहे, किंतु आपदाओंसे सदैव घिरे रहे। एक-एक करके १४ सन्तानोंको क़ब्रमें उतारना पड़ा। सुख-दुःखकी साथी पत्नी चल बसी। लेखन-कार्यमें पूर्ण सहायक ब्याही-त्याही युवा लड़की अल्लाहको प्यारी हो गई। मकानमें आग लग गई। उसपर भी हिम्मत न हारी। एकाग्रचित्तसे साहित्य-सृजन और साहित्य-सेवाके लिए देश-विदेशका भ्रमण करते रहे। जर्जर शरीर साथ देता रहा, परन्तु मस्तिष्क विकृत हो उठा।

इसी आलममें एक रोज़ चुपचाप घरसे निकल पड़े और जंगलोंकी खाक छानते हुए पैदल दिल्ली पहुँचे। न सरपर पगड़ी, न पाँवमें जूते, चिथड़ोंमें मलबूस, परेशान हाल मौलानाको लोगोंने देखा तो सकतेमें रह गये। कहाँ उनका वह प्रतिष्ठित व्यक्तित्व और कहाँ यह शोचनीय स्थिति? देखकर कलेजा मुँहको आता था। जौक़-दर-जौक़ लोग नियाज़ हासिल

करने आते थे, परन्तु उन्हें आपेमें न देखकर सर पीटकर रह जाते थे। इष्ट-मित्रोंने उन्हें अपने-अपने यहाँ ले जानेके काफ़ी प्रयास किये, किन्तु सब व्यर्थ। ख्याति-प्रतिष्ठा, मान-अपमान, लोक-लिहाज़, भूख-प्याससे आज़ाद होकर मौलाना 'आज़ाद' दिल्लीके उन गली-कूचों, सड़कों-बाजारोंमें नंगे पाँव, फटे हाल घूमते थे, जहाँ कभी उनके क़दमोंमें लोग आँखें बिछाये रहते थे।

ऐसी स्थितिमें उनके बाल्य-सखा-शम्स-उल-उलमा मुंशी ज़काउल्लाह साहब उन्हें अपने यहाँ किसी तरह ले जानेमें सफलता प्राप्त कर सके। उन्हें अपने यहाँ बहुत आरामसे रखा। उनकी हर आवश्यकताओंका ध्यान रखा और हर तरहसे उनकी नाज़ बरदारियाँ उठाई।

एक रोज़ मुंशीजी नाईसे बाल बनवा रहे थे कि यकायक 'आज़ाद' उससे क़ैंची और उस्तरा छीनकर मुंशीजीके स्वयं बाल बनाने लगे। मुंशी-जीने आज़ादको बाल बनानेके लिए उद्यत देख नाईसे कहा—"तू हट जा, आज हमारे बाल हमारे दोस्त बनायेंगे।" और चुपचाप निशंक उनसे बाल बनवाते रहे। आज़ादने निहायत सलीक़ेसे पहिले क़ैंचीसे दाढ़ी छाँटी, फिर उस्तरेसे खत बनाया।

इष्ट-मित्रोंको जब इस घटनाका इल्म हुआ तो उलाहना देते हुए बोले—"मुंशीजी आप भी कमाल करते हैं? ऐसे दीवानेके हाथमें क़ैंची-उस्तरा देकर अपनेको उनके सुपुर्द कर दिया। भला बताइये नाक, कान, गला कुछ भी तराश देता तो क्या होता?" मुंशीजीने मुसकराते हुए फ़रमाया—"मेरा दोस्त दीवाना ज़रूर है, मगर वह किसीका गला नहीं काटेगा, इतना यक़ीन रखो। इल्मो-दीनका जामा पहिने हुए भी जो दूसरोंका गला काट रहे हैं, उन आक़िलोंसे मेरा यह दीवाना दोस्त ब-दरजह क़ाबिले-ऐतमाद (विश्वास-योग्य) है।"

१० फरवरी १९५६ ई०

# सौदाकी सहृदयता

उर्दूके प्रसिद्ध क़सीदागो मिर्ज़ा 'सौदा' जितने ज़्यादा दिलके साफ़ थे, उतने ही ग़ुस्सैल भी थे। जब किसीपर बिगड़ते, फ़ौरन् अपने नौकरको पुकारते—"अरे ग़ुंचा ! ला तो मेरा क़लमदान ज़रा मैं इसकी खबर तो लूँ, यह मुझे समझा क्या है।"

फिर शर्मकी आँखें बन्द और बेहयाईका मुँह खोलकर वोह्-वोह् बेनुक़त सुनाते थे कि शैतान भी अमान माँगे।

'सौदा'की कही हुई हिजो एक कानसे दूसरे कान पहुँचते-पहुँचते लखनऊके गली-कूचोंमें बहुत शीघ्र फैल जाती थी। परिणाम-स्वरूप जिसके विरुद्ध हिजो कही जाती वह लखनऊभरमें उपहासास्पद बन जाता था।

ग़रज़ हर शरीफ़ आदमी आपसे घबराता था कि न जाने कब किस बात पर बरहम हो जायें और बदनाम करके रख दें। लेकिन सेरको सवासेर भी मिल ही जाते हैं। एक पठानने तो भरे दरबारमें सीनेपर चाक़ू रख दिया था।

एक बार सौदाके प्रतिद्वन्द्वी मिर्ज़ा फ़ाखिरके शिष्य आपके घरपर चढ़ आये और आपके पेटपर छुरी रखकर कहा—"जो कुछ तुमने हमारे उस्तादके बारेमें कहा है, उसे वापिस लो और चलकर उस्तादके सामने फ़ैसला करो"।

सौदाको ज़बान चलाना तो आता था, मगर छुरीसे वास्ता न पड़ा था। अतः सब औसान भूल गये और गर्दन झुकाये उनके साथ जाना पड़ा।

शिष्य-समूह आपको घेरे हुए चौक बाज़ारमें पहुँचा तो बेइज़्ज़त करनेपर उतारू हो गया। लेकिन उस समय भाग्यसे नवाब आसफुद्दौलाके छोटे भाई सआदतअली खाँ उधर आ निकले, भीड़में सौदाको घिरा हुआ देखकर

उन्हें अपने साथ हाथीपर बिठाकर ले गये, और नवाब साहबसे जाकर कहा —"भाई साहब; बड़ा ग़ज़ब है। आपकी हुकूमत और शहरमें यह क़यामत? बाबाजानने जिसको बिरादरमन, और मुशफ़िक़ महरबान कहकर खत लिखा। आरजूएँ करके बुलाया और वह न आया। हमारी खुश क़िस्मतीसे अब वही 'सौदा' यहाँ आ गये हैं तो वे इस हालतमें हैं कि ऐन-वक़्तपर मैं न पहुँचता तो बदमाशोंने उन्हें बेइज़्ज़त कर डाला होता।"

आसफ़ुद्दौला सुनते ही क्रुद्ध होकर बोले—"बाबाजानने सौदाको भाई लिखा तो वे हमारे बाबा हुए। फ़ाखिरने सौदाको नहीं हमको बेइज़्ज़त किया।"

नवाब साहबने तत्काल शेखज़ादोंके मुहल्ले-का-मुहल्ला उखड़वाकर फेंक देने, उन्हें शहरसे निकाल देनेका हुक्म दिया। और मिर्ज़ा फ़ाखिरको जिस हालतमें हों उसी हालतमें हाजिर करनेका हुक्म हुआ।

इस हुक्मकी भनक 'सौदा'के कानमें पड़ी तो वे घबराये हुए नवाब साहबके हुज़ूरमें पहुँचे और हाथ बाँधकर अर्ज़ की—"जनाबआली हम शायरोंके झगड़े क़ाग़ज़-क़लमके मैदानमें खुद-ब-खुद मिट जाते हैं। आप बीच-में न पड़ें। खुदाके लिए उन्हें माफ़ कर दीजिए।"

सौदाकी इस सहृदयतापर नवाब मुसकराकर रह गये।[1]

३ सितम्बर १९५६ ई०

---

[1] आबेहयातके आधारपर